योग सिद्धान्तों और शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

वर्ष 33 मार्च 2001 अंक 12

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सवाई (आगरा)-283 202

SIDDHYOG
MONTHLY

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्त श्री

चन्द्रमोहन जी महाराज

❒

सम्पादक :

आचार्य ब्र० दासलाल शर्मा

❒

संयुक्त सम्पादक :

डा० विजय सिंह

❒

प्रबन्ध सम्पादक :

ब्र० राजेशचन्द्र शर्मा

चन्द्रशेखर 'दिव्य'

आचार्य चन्द्रहास शर्मा

राजेश कुमार श्रीवास्तव

विनोद कुमार शर्मा

एक प्रति	रु०	8-00
वार्षिक शुल्क	रु०	85-00
द्विवार्षिक	रु०	150-00
आजीवन	रु०	800-00

इस अंक में

❒ अमृत कण.................................. 2

❒ विशेष लेख

अनन्त श्री चन्द्रमोहनजी महाराज... 3

❒ सम्पादकीय.................................. 10

❒ सबसे बड़े देव - श्री गुरुदेव

केशवदेव उपाध्याय...................... 15

❒ हे अखण्ड ज्योति गुरुवर !

डॉ० कृष्णवीर सिंह तोमर.............. 18

❒ सिद्धों की कृपास्थली और सिद्धयोग की साधना प्रणाली का एक परिदृश्य

प्रो० चन्द्रहास शर्मा...................... 19

❒ दुःख-निवृत्ति का क्या उपाय है ?

मा० श्री भगवत्स्वरूपजी.............. 25

❒ ऐसे प्रभुजी हैं अलबेले !

भूपेन्द्र 'अंकुर'.............................. 28

❒ जीवन में स्वरोदयकी महत्ता

रामप्यारे अग्निहोत्री...................... 29

❒ परम तत्त्वोपदेष्टा गुरु और जिज्ञासु शिष्य

डॉ० श्रीमहाप्रभुलालजी................ 33

❒ प्रयागराज महाकुम्भ शिविर

राजेश कुमार श्रीवास्तव.............. 37

❒ जीवन तत्त्व साधन...................... 38

❒ ❒ ❒

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द, संवाई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 33
अंक 12

मार्च
2001

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्,
मर्त्यो मृत्योर्मुख विवरतो, मुक्ति माप्नोति सद्यः।
तत्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणानां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

नमोऽस्तु विष्णवे तस्मै यस्याभिन्नमिदं जगत्।
ध्येयः स जगतामाद्यः स प्रसीदतु मोऽव्ययः।।
यत्रोतमेतत्प्रोतं च विश्वमक्षरम व्ययम्।
आधारभूतः सर्वस्य स प्रसीदतु मे हरिः।।
ॐ नमो विष्णवे तस्मै नमस्तस्मै पुनःपुनः।
यत्र सर्वं यत् सर्वं यः सर्वं सर्वसंश्रयः।।

(विष्णु पुराण १/१६/८२–८४)

अर्थात्

यह जगत जिनका अभिन्न स्वरूप है, उन विष्णु भगवान को नमस्कार है, वे जगत के आदिकारण और योगियों के ध्येय अव्यय हरि मुझ पर प्रसन्न हों। जिनमें यह सम्पूर्ण विश्व ओतप्रोत है, वे अक्षक-अव्यय और सबके आधारभूत हरि मुझ पर प्रसन्न हों। ॐ जिनमें सब कुछ स्थित है, जिनसे सब उत्पन्न हुआ है और जो स्वयं सब कुछ तथा सबके आधार हैं, उन वेदतत्व ऊँकार स्वरूप भगवान श्री विष्णु को नमस्कार है, उन्हें बार-बार नमस्कार है।

अमृत कण

सत्यमेवेश्वरो लोके सत्ये धर्मः सदाश्रितः।
सत्यमूलानि सर्वाणि सत्यान्नास्ति परं पदम्।।
दत्तमिष्टं हुतं चैव तप्तानि च तपांसि च।
वेदाः सत्यप्रतिष्ठानास्तस्मात् सत्यपरो भवेत्।।

(अयोध्या० १०९/१३-१४)

जगत् में सत्य ही ईश्वर है, सदा सत्य के ही आधार पर धर्म की स्थिति रहती है। सत्य ही सबकी जड़ है। सत्य से बढ़कर दूसरी कोई उत्तम गति नहीं है। दान, यज्ञ, होम, तपस्या और वेद-इन सबका आश्रय सत्य है, इसलिये सबको सत्यपरायण होना चाहिये।

✻ ✻ ✻

येषां त्रीण्यवदातानि विद्या योनिश्च कर्म च।
ते सेव्यास्तैः समास्या हि शास्त्रेभ्योऽपि गरीयसी।।

(वन० १/२७)

जिनके विद्या, कुल और कर्म-ये तीनों शुद्ध हों, उन साधु पुरुषों की सेवा में रहे। उनके साथ बैठना-उठना शास्त्रों के स्वाध्याय से भी श्रेष्ठ है।

✻ ✻ ✻

असतां दर्शनात् स्पर्शात् सञ्जल्पाच्च सहासनात्।
धर्माचाराः प्रहीयन्ते सिद्ध्यन्ति च न मानवाः।।

(वन० १/२९)

दुष्ट मनुष्यों के दर्शन से, स्पर्श से, उनके साथ वार्तालाप करने से तथा एक आसन पर बैठने से धार्मिक आचार नष्ट हो जाते हैं और मनुष्य किसी कार्य में सफल नहीं हो पाते।

✻ ✻ ✻

धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः।
तस्माद्धर्मं न त्यजामि मा नो धर्मो हतोऽवधीत्।।

(वन० ३१३/१२८)

धर्म ही आहत (परित्यक्त) होने पर मनुष्य को मारता है और वही रक्षित (पालित) होने पर रक्षा करता है, अतः मैं धर्म का त्याग नहीं करता-इस भय से कि कहीं मारा (त्याग किया) हुआ धर्म हमारा ही वध न कर डाले।

✻ ✻ ✻

विशेष लेख

अस्मितानुगत समाधि

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

आनन्दानुगत समाधि में साधक में महाभावों का उदय हुआ करता है। वह अपने इष्टदेव का सर्वत्र दर्शन किया करता है। **यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वम् च मयि पश्यति** वाली बात उस साधक की हो जाती है। एक बार लाहौर में एक रास मण्डली गयी। एक वैश्य के लड़के ने रास में जो कृष्ण बनता था उस लड़के की फोटो लेनी चाही। परन्तु रासधारियों ने इसकी अनुमति नहीं दी। वह लड़का निराश होकर किसी शिवालय में जाकर बैठ गया और नमः शिवाय का जाप करता हुआ तप करने लगा। स्वाध्याय के फलस्वरूप एक माला भगवान शंकर के पिण्डी से गिरी। आकाशवाणी हुई वृन्दावन चले जाओ। वह लड़का वृन्दावन चला गया। मैं उन दिनों श्री वृन्दावन ही रहा करता था। हमने उसे मोती झील में पड़ा देखा तो मैंने उसे जगाया। मैंने उससे पूछा-तुम कैसा अनुभव कर रहे हो ? उसने बताया मुझे भगवान कृष्ण के अतिरिक्त कुछ नहीं दीखता। मैंने पूछा यह पहाड़ देख रहे हो, मकान देख रहे हो ? उसने कहा नहीं मुझे सर्वत्र कृष्ण ही कृष्ण दिखाई देते हैं। उन्होंने मुझ से कहा- आप भी बहुत ऊँची स्थिति के हैं। भगवान के पूर्ण कृपापात्र हैं। उसके भाई की दुकान थी वह बताता था कि वे इसी हालत में पड़े रहते हैं। भगवान शिव के शक्ति पात से वह आनन्दानुगत समाधि को पाकर सर्वत्र इष्ट दर्शन करता था। अस्तु।

आज के अपने व्याख्यान में मैं तुम्हें अस्मितानुगत के विषय में बताऊँगा। अस्मितानुगत समाधि में योगी अखण्ड मण्डलाकार तेज ही तेज देखता है। इसके अतिरिक्त किसी नाम रूप को नहीं देखता। विशुद्ध तेज में तदाकार कारित होकर अपने आप को प्रकाश स्वरूप देखता है। यह सम्प्रज्ञात समाधि की पराकाष्ठा है। यह भी देखने व अनुभव का विषय होने से निर्बीज समाधि नहीं है। जो चीज अनुभव में आती है मन अनुभव करता है वह निर्बीज निस्त्रैगुण्य स्थिति नहीं हुआ करती। गुणातीतावस्था में तो कुछ भी अनुभव नहीं होता।

हमारे बड़े गुरू भाई योगिराज मुलखराज जी महाराज की पत्नी का देहान्त हो गया, वह रोये नहीं। किन्तु जब पत्नी के भाई बन्धु आकर रोते थे तो वह भी रो पड़े। ऐसा करने पर उन्होंने देखा-कि एक दिव्य विमान आकाश से उतर कर उनके सामने आ गया। उनकी धर्मपत्नी उस में विराज रही थीं। वह कहने लगीं- स्वामी ! प्रभु ने आप के कारण मुझ दिव्य लोक दे दिया है; किन्तु आपके आँसुओं ने मुझे यहाँ आने को बाध्य कर दिया। इस पर मुलखराज जी महाराज ने कहा-मुझसे भूल हुई है, अब तुम अपने लोक को लौट जाओ। श्री प्रभु जी श्री मुलखराज महाराज के मोह को

भंग करना चाहते थे। **'गुरोस्तु मौनम्व्याख्यानम् शिष्यास्तु छिन्न संशया:'** गुरूदेव अन्तर्यामी रूप से शिष्यों के संशय दूर करते रहते हैं। प्रभु जी ने मुल्खराज जी को ध्यान में बिठा दिया। ध्यान में ही प्रभु जी ने उनसे कहा–मेरी ओर देख ! मुल्खराज जी ने कहा–प्रभु ! आप ब्रह्म रूप में हैं। फिर देखो–प्रभु जी आप विष्णु रूप हैं, फिर देखो, आप शिव रूप हैं। फिर देख–अखण्ड मण्डलाकार प्रकाश ही प्रकाश है, नाम व रूप का कोई तत्व इसमें नहीं है ! मैं भी इसी प्रकाश में लीन हूँ। श्री प्रभु जी ने समझाया–यह वह तत्व है जिसको पाकर दोबारा लौटना नहीं होता। नाम रूप समाप्त होने के बाद आत्मिक सत्ता उस तेज में विलीन हो जाती है। अस्मितानुगत समाधि में **अस्मि, अस्मि'** मैं हूँ, मैं हूँ ऐसी एक ही वृत्ति शेष रहती है। इस वृत्ति को निर्वाणोन्मुखी वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति स्वयं भी खत्म होना चाहती है। यह भी त्रिगुणात्मिका ही है इसके दृढ़तर अभ्यास के बाद गुणों का गुणों में अवस्थान हो जाता है। निर्बीज में पुरुष (आत्मा) अपने स्वरूप में स्थित हो जाता है। इस अस्मितानुगत समाधि की परिपुष्टि के साथ-साथ दो सिद्धियों का प्रादुर्भाव होता है जिसमें पहली सिद्धि है 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा' **ऋतं सत्यं बिभर्ति या सा ऋतम्भरा'**। सत्य को ही धारण करने वाली बुद्धि को ही ऋतम्भरा बुद्धि कहते हैं। **'यां मेधां देव गणाः पितरश्च उपासते'** यही देवताओं और पितरों द्वारा उपास्य मेधा है जो योगी को अस्मितानुगत की पुष्टि होने पर मिला करती है। जिस योगी को ऋतम्भरा बुद्धि प्राप्त हो जाती है वह जो देखता है सत्य देखता है, जो सुनता है सत्य सुनता है। उनके मन में सत्य ही आता है। ऐसा व्यक्ति ही सिद्धान्तों का निर्णायक बन सकता है। इस समाधि वाले योगी की वाणी **'अमोघः अस्य वाक् भवति'** अमोघ होती है। ऋतम्भरा प्रज्ञा के संस्कार अन्य समस्त संस्कारों को रोक लेते हैं। **'तज्जः संस्कारों'** अन्य संस्कार प्रतिबन्धी ऋतम्भरा का संस्कार अन्य संस्कार को काट देता है। ऋतम्भरा प्राप्त योगी संस्कारों के आधीन नहीं रहता प्रत्युत् संस्कार उसके आधीन हो जाते हैं। दूसरी ताकत योगी को मिलती है चित्त निर्माण की 'निर्माणचित्तान्यस्मिता मात्राद्' योगी अपने हजार चित्त बना सकता है और एक समय में ही अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग व्यक्तियों से बात-चीत तथा व्यवहार कर सकता है। मैंने तुम्हें कई बार अपने बचपन के साथी श्री अगडधत्ता के बारे में बताया है। श्री वृन्दावन में हम दोनों साथ-साथ रहते थे। उसकी चित्त निर्माण की योग्यता मैंने देखी थी। सारा प्रकरण तुम लोगों को मालूम ही है। इसका विस्तृत विवरण हमने 'आठ योगी' नामक पुस्तक में दिया है। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी हमारे गुरु भाई-बहिनों को ध्यान में बैठा कर चित्त बनाने की आज्ञा दिया करते थे। किसी से कहते थे तुम यह देखो अमुक के मन में क्या भाव आ रहे हैं इसके मन में मन मिलाओ और बुद्धि में बुद्धि मिलाओ और जानो कि इसके मन में क्या-क्या भाव आ रहे हैं ? जिस व्यक्ति के मन के भावों को जानना होता था उसे पहले ही कागज में लिखा लिया करते थे। ऐसे अलग-अलग साधकों को अलग-अलग व्यक्तियों के मनोभावों को जानने में लगा दिया करते थे। इसमें सभी तो सफल नहीं रहा करते थे किन्तु जो ऊँची स्थिति वाले थे वे सफल हो जाते थे। ध्यान से उठकर साधक श्री

प्रभु जी के उस व्यक्ति के मनोभावों को बता दिया करता था। उधर श्री प्रभु जी के पास कागज में पहले ही लिखा रहता था। उससे मिलान कर लिया जाता था। इस प्रकार से जो अस्मितानुगत की पूर्णता वाले योगी होते हैं वे चित्त निर्माण कर लिया करते हैं। चित्त निर्माण की योग्यता आ जाने के बाद कालान्तर में जब योगी चाहे तो काय निर्माण की योग्यता भी आ जाती है। भगवान पतंजलि ने योगदर्शन में योग की परिभाषा **'योगश्चित्तवृत्ति निरोधः'** कह कर की है। **'चित्तवृत्तीनाम् नितरां रोधः योगः'** अर्थात् चित्तवृत्तियों का पूर्ण निरोध योग कहलाता है। व्युत्थान अवस्था में हमारा मन भिन्न-भिन्न विषयों को ग्रहण करता है। वैशेषिक दर्शन के अनुसार 'युगपदनेकज्ञानानुपत्तिर्मनसो **लिङ्गम्'** अर्थात् जो एक समय में एक ही ज्ञान रखने वाला है, उसे मन कहते हैं। मन ने फूल देखना चाहा–चक्षु ने रूप दर्शन करा दिया, क्योंकि चक्षु अग्नि का केन्द्र है। अतः वह ही रूप दर्शन में समर्थ है। उस समय हमें मन चक्षु एवं फूल के संयोग से फूल का ज्ञान हुआ। इतने में किसी ने हमें स्पर्श किया हमें स्पर्श ज्ञान होने लगा। उस समय रूप ज्ञान समाप्त हो गया। पुनः किसी ने इत्र सुंघाया घ्राणेन्द्रिय की सहायता से मन को इत्र गन्ध का ज्ञान हुआ, उस समय हमारा स्पर्श ज्ञान समाप्त हो गया। इसी प्रकार से क्षण-क्षण में हमारे मन को अलग-अलग विषयों का ज्ञान होता रहता है। जहाँ-जहाँ इन्द्रियों ने मन को फैलाया, वहाँ-वहाँ वैसे-वैसे रूपवाला बन गया। जैसे नदी का प्रवाह चलता है। एक लहर में फूल बह कर आया दूसरी लहर में लकड़ी बह कर आई–तीसरी लहर में पत्ते बह कर आए। हर लहर एक दूसरी लहर से भिन्न है। इसी प्रकार से मन की वृतियाँ हैं। एक समय में मन में एक ही ज्ञान रहता है। इसलिए मन को चंचल कहा गया है। क्षण-क्षण में इसे अलग-अलग ज्ञान होते रहते हैं। सत्व रज एवं तमोगुण से चित्त वृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं। एक-एक गुण से एक प्रकार की, दूसरे गुण से दूसरे प्रकार की वृत्ति पैदा होती है। गुण वैचित्र्य के कारण ही संसार में जितने भी प्राणी हैं सब भिन्न-भिन्न स्वभाव वाले हैं। सब का स्वभाव अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार है उनकी चेष्टाओं में भिन्नता रहती है। त्रिगुण से ही सब वृतियाँ चलती हैं।

चित्त वृति निरोध का अर्थ चित्तवृत्तियों का बिल्कुल खत्म हो जाना अथवा चित्त वृत्तियों का बिल्कुल रुक जाना नहीं है। जब तक मन का ही नाश नहीं होता, तब तक वृत्तियों का नाश नहीं होता– मन के नाश होने पर ही 'न रहेगा बांस, न बजेगी बांसुरी' की उक्ति चरितार्थ हो सकती है।

योग का लक्ष्य चित्तवृत्ति का नितरां रोध है। यह चित्त नाश से ही संभव है। योग दर्शन में किसी एक विशेष देवता की उपासना करने को नहीं कहा गया है। हिन्दु-मुसलमान, पारसी-ईसाई आदि एक समुदाय विशेष के लिए ही उपासना का विधान नहीं है। यह सबके लिए, मनुष्य मात्र के लिए है। अतः सार्वभौम साधना है। चित्तवृत्तियों का निरोध समाधि से ही होता है **'समाधि वै योगः'**, **''योगः समाधि समाधि समतावस्था जीवात्मपरमात्मनः''** जीवात्मा परमात्मा की एकरूपता एकावस्था को प्राप्त होना ही समाधि है। ऐसी स्थिति को प्राप्त करने के लिए ही सब उपाय बताए हैं योग दर्शन का सिद्धान्त है **''सत्व पुरुषयोः शुद्धि साम्ये कैवल्यम्''** बुद्धि और

पुरुष की शुद्धि होने पर कैवल्य प्राप्त होता है। कैवल्य का अर्थ है अकेलापन केवलीभाव। वही समाधि है, वही योग तथा स्वरूपावस्था है। जहाँ चित्तवृत्ति नहीं रहेगी वहाँ आत्मा अकेलेपन में आ जाएगा। आत्मा का स्वरूप गीता में भगवान ने-

अच्छेद्योऽयमदाह्योऽयम्ऽविकार्योऽयमुच्यते
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो नशोषयति मारुतः।।

आदि वचनों से समझाया है।

उपनिषदों पुराणों में भी आत्मा के स्वरूप का निरूपण ऐसे ही किया है। जीवावस्था में हमें सर्दीगर्मी भूख-प्यास आदि दैविक-आधिभौतिक दुःख सताते रहते हैं। हम जितने विलासिता के साधन जुटाएँगे उतने ही कष्ट में रहेंगे। देखो ! हमारा मुख हमेशा खुला रहता है मुख को सर्दी नहीं लगती है। सर्दी के मौसम में भी हम मुख में सर्दी अनुभव नहीं करते। कारण यह है कि हमने इसे जन्म से ही खुला रखा है। उसका स्वभाव ही इस प्रकार का हो गया है गर्मी भी कम लगती है। आत्म स्वरूप के अन्दर दुःख सुख का भान नहीं होता है। अभी हमें निरन्तर सुख-दुःख सताते रहते हैं क्योंकि हमें बौद्धेय ज्ञान है। इसे गुणात्मक ज्ञान कहना चाहिए। आत्मा में एक दोष आ गया है आत्मा और बुद्धि की गांठ बन गई है। आत्मा ने अपना रूप बुद्धि को दे दिया बुद्धि ने अपना रूप आत्मा को दे दिया- इससे दोनों ही दुखी हैं। आत्मा एक निर्मल ज्योति है- बुद्धि सामने आई। लाल रंग का फूल है आत्मिक शीशा निर्मल है। फूल सामने आने पर शीशा लाल दिखाई देता है। नीला शीशा है आत्मिक ज्योति नीली दिखाई दी। इसी प्रकार से बुद्धि ने आत्मा से चेतनता ली और अपने सुख-दुःखादि भोग आत्मा को दिए। यदि बुद्धि सामने से हटा दी जाए तो आत्मा निर्मल ज्योति ही है। आत्मा के सामने से आवरण हटा देना ही योग दर्शन का लक्ष्य है। शक्ति किस प्रकार बढ़ जाया करती है, योग दर्शन में इसका विशद् वर्णन है। प्रकृति में-बुद्धि में भी बहुत ताकतें हैं। योगी आकाश में उड़ता है अग्नि में प्रवेश करता है सब कुछ करने की ताकत रखता है। ये सारी ताकतें गुणात्मिका तथा प्रकृति पर हकूमत करने पर आती हैं। योगी का **''परमाणु परम् महत्तत्वान्तोऽस्य वशीकारः''** जितना भी प्रकृति में परिवर्तन हो सकता है, वह एक योगी कर सकता है।

हमारे गुरूदेव आनन्दकन्द श्री प्रभु जी अपने मुखारविन्द से कहा करते थे कि हिमालय में ऐसे-ऐसे योगी हैं जिन्होंने अपने संकल्प मात्र से सृष्टि की रचना की हुई है। जब उस सृष्टि का लय करना चाहे तो स्वांस अन्दर खींच ली और प्रलय हो गया। फिर पता नहीं चलता है कि दिखने वाले स्त्री-पुरुष कहाँ चले गये। प्रकृति पर अधिकार से ही यह सब सम्भव होता है।

योगी में अष्टविध अणिमादि सिद्धियाँ आ जाती हैं। ये सब गुण-विस्तार हैं। प्रकृति विस्तार है। ये सब प्रकृति में है। आत्मा में ये सब कुछ नहीं है। आत्मा न सिद्धि शक्तिवाला है न बिना सिद्धि शक्ति वाला है। आत्मा निर्विकारी है। उसमें कोई विकार नहीं आता है। योग दर्शन में दृष्टा

जीवात्मा के स्वरूप का वर्णन तीसरे सूत्र में किया है–**'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थान्' 'तस्मिन् स्थितो समाधौ द्रष्टुः आत्मनः स्वरूपेऽवस्थाम'** तब निर्विकल्प समाधि में अपने स्वरूप में ठहर जाया करता है। यहाँ प्रश्न उठता है कि 'स्वरूपप्रतिष्ठा की दृशी' स्वरूप प्रतिष्ठा होने पर आत्मा की अवस्था कैसी होती है ? व्यासदेव जी ने भाष्य में उसका उत्तर दिया है। **'चितिशक्तिर्यथा कैवल्ये'**। चेतन शक्ति जैसे कैवल्यावस्था में होती है। वैसे ही निर्विकल्प समाधि में होती है। जो उसका अपना स्वरूप प्रतिष्ठा है। उस के प्राप्त होने पर आत्मा केवली भाव में होता है।

योगी जब समाधि लगाता है तो वह प्राणकोश को ऊपर ले आकर शुद्ध स्वरूप में ठहर जाता है। उसके प्राकृत सम्बन्ध सब छूट जाता है। थोड़ी देर के लिए समझने के लिए हम उदाहरण से समझ सकते हैं। यद्यपि उदाहरण एकांशी हुआ करता है। उदाहरण पूर्ण रूपेण घटित नहीं हुआ करता। रात्रि में हम सो जाते हैं। लोगों को स्वप्न आते हैं वे स्वप्नावस्था में भी उन-उन विषयों को देखते रहते हैं जिन का चिन्तन दिन भर का बना हुआ होता है। कुछ लोगों को स्वप्न नहीं आते वे प्रगाढ़ निद्रा में चले जाते हैं। इसे सुषुप्ति कहते हैं। इस अवस्था में हमें अपने घर-मकान, स्त्री, पुत्र, बन्धु-बान्धव कुछ भी याद नहीं रहते इसमें मन भी कार्य करना बन्द कर देता है। प्रातः काल निद्रा से उठ जाने पर हमें घर-मित्र, पुत्र आदि सब याद आ जाते हैं। किन्तु यह निद्रा भी एक वृति है। क्योंकि प्रातः काल उठने पर हमें सुख-दुःख का अनुभव होता है। हम कहते हैं, सुखमहमस्वाप्सम्, दुःखमहमस्वाप्सम् ''गुरूणि मे गात्राणि'' मैं सुखपूर्वक सोया, मैं दुःख पूर्वक सोया, मेरा शरीर भारीपन महसूस कर रहा है। इस प्रकार की अनुभूति रहती है। अतः यह भी एक वृत्ति है- निद्रा का लक्षण है। **'अभाव प्रत्ययावलम्बनम् वृत्ति निद्रा'**–निंद्रा भी एक वृत्ति है। सुषुप्ति में सांसारिक ज्ञान समाप्त हो जाता है।

'अभाव प्रत्ययावलम्बनम् वृतिर्निद्रा' अभाव ज्ञान का अवलम्ब लेने वाली वृत्ति निद्रा है। उस समय ऐसा लगता है न जगत था, न है। उस समय जाग्रतावस्था की बातों का ज्ञान नहीं रहता अभी हम बुद्धि के नाच नचाने पर चल रहे हैं। बुद्धि सब खेल खेल रही है। बुद्धि ही हमें स्त्री-पुरुष, सुखी-दुःखी आदि बनाती रहती है। आत्मा न सुखी न दुःखी, न स्त्री है, न पुरुष है, न छोटा होता है न बड़ा होता है। वह तो निर्विकारी है। इस स्थिति को योगी समाधि द्वारा प्राप्त करना है। समाधि में जीव एवं ब्रह्म में कोई भेद नहीं रहता। इन दोनों में कोई विकार नहीं होता।

योगी हजारों वर्षों तक समाधि में बैठे रहा करते हैं। समाधि से उठ जाते हैं तो **''वृत्ति सारूप्यामितरत्र''** जैसी प्रकृति-स्वभाव होता है वैसे चेष्टा करता है **''सदृशं चेष्टते स्वस्याः''**।

यदि कोई आत्मा का स्वरूप जानना चाहता है तो वह समाधि लगाना सीख जाए तो आत्मा स्वरूप को अनुभव कर सकता है। समाधि से नीचे आने पर उस स्थिति को बता ही नहीं सकता। निर्बीज समाधि में प्रकृति का कोई बीज नहीं रहता।

समाधि में योगी को समय का कोई ज्ञान नहीं रहता। हजार वर्ष की समाधि काल भी उसे क्षण

के समान लगता है। यह निर्बीज समाधि में होता है। जो लोग भू-समाधि आदि लगाते हैं यह कोई समाधि नहीं है। शास्त्रीय सिद्धांत में इसे समाधि नहीं माना जाता। हाँ-थोड़ा बहुत प्राण शक्ति पर अधिकार सा होता है कई एक जमीन में ही मर जाते हैं। कोई-कोई जिन्दा बच निकलता है। अस्तु।

आनन्दकन्द श्री प्रभु जी दो बच्चों की बातें बताया करते थे। प्रभु जी अपने नाम से घटनायें कम ही बताया करते थे। घटनायें प्रायः उन्हीं की होती थी। घटनायें सुनाना एक प्रकार से योग सिद्धान्तों को समझाने का एक ढंग होता है।

श्री प्रभु जी बताते थे कि एक स्थान पर कोई महात्मा पहुँचे। दो बच्चे उनके सामने आए। बहुत ही विनीत भाव से उन दोनों ने उन्हें प्रणाम किया। प्राणी पूर्वकृत सत्कर्मों के फलस्वरूप अहंकार को त्यागकर महापुरुषों के प्रति आत्मसमर्पण कर ले तो वह सब कुछ पा लेता है। शक्ति बल पूर्वक प्राप्त नहीं की जा सकती गीता कहती है- **'श्रद्धावान् लभंते ज्ञानम्'** श्रद्धालु व्यक्ति ही ज्ञान व शक्ति को पाया करता है।

महात्मा ने कृपा कर दोनों बच्चों पर शक्तिपात कर दिया। उनकी समाधि हो गई। इस अवस्था में चार सौ वर्ष तक बैठे रहे। इस अवस्था में योगी के प्राणकोष ऊपर ब्रह्माण्ड में चढ़ जाते हैं। प्राणस्पन्दन भी कम मात्रा में होता है। शरीर क्षीण व जर्जर हो जाया करता है। केवल मात्र जीवनी शक्ति बनी रहती है। समाधि से उठने के बाद उन्हें अपने घर मकान, माता-पिता याद आने लगे। परन्तु उन्हें न अपना कोई घर मिला, न पुरानी गलियाँ मिली। सब कुछ परिवर्तित हो चुका था। अन्त में एक अत्यन्त वृद्ध पुरुष वहाँ आया। वह प्रणाम करने लगा व कहने लगा-जिन व्यक्तियों का तुम नाम ले रहे हो वह तो मेरे परदादा थे। मैं उनकी चौथी-पाँचवी पीढ़ी में हूँ। परन्तु उन बच्चों को ऐसा लग रहा था कि वे अभी-अभी समाधि में बैठे हों। यह बात निर्बीज समाधि की थी।

जब हमने पहले-पहले योग प्रचार आरम्भ किया उस समय साधकों पर गहरे शक्तिपात हुए। उनकी बड़ी ऊँची-ऊँची ध्यानस्थितियाँ बनी। करनाल जिले के सालवन गाँव में एक क्षत्रिय लड़का साधूराम हमारा दीक्षित साधक था। उसको हमने शाम ही आरती के बाद ध्यान में बैठाया। वह इसी अवस्था में दो दिन दो रात बैठा ही रहा। बहत्तर घण्टे इस प्रकार बैठने पर हमने सोचा कि इसके पेट में मल-मूत्र सड़ रहा होगा अतः उठा देना चाहिए। हमने उसके प्राण कोष नाड़ियाँ मल कर नीचे उतार कर उसे चेतना दी। उठने पर वह कहने लगा। गुरूदेव ! आपने यह अच्छा नहीं किया जो मुझे इतनी जल्दी ध्यान से उठा दिया। अभी तो आरती की ज्योति चल रही है। मैं आरती के बाद ही तो ध्यान में बैठा था- इस पर उपस्थित साधकों ने कहा साधुराम ! तुम्हें इस अवस्था में बैठे दो दिन रात हो गए हैं। किन्तु साधुराम को ऐसा लग रहा था कि वह कुछ क्षण पहले ही ध्यान में बैठा था। समाधि में योगी को समय व संसार का कोई ज्ञान नहीं रहता है। हिमालय में निर्बीज समाधि वाले बहुत से योगी हैं जो कई-कई हजार वर्षों से बैठे हैं। कुछ दिन पूर्व हमने एक अखबार पढ़ा था। उसमें लिखा था कि कोई अंग्रेज भारतीय योगियों की खोज में बद्रीनाथ की ओर गया। वहाँ उन्होंने

एक योगी को देखा- उस योगी के साथ स्त्रियाँ भी थीं। वे सब युवा जैसे लगते थे। उन्होंने बताया कि वह अकबर के समय से यहाँ समाधि में रहा करते हैं। उस समय किस का राज्य है हमें ज्ञान नहीं है। जो भूतजयी होते हैं वह अपने शरीर को हजारों वर्षों तक इसी प्रकार रख सकते हैं।

यदि एक योगी खाता-पीता है-शुद्ध स्वरूप में नहीं रहता उसका शरीर भी बदलता रहेगा-क्षीण होता रहेगा तथा नाश भी होता।

जो लोग छोटी-छोटी साधनायें करते हैं वह भी लम्बी आयु को पा जाया करते हैं। भारत में देवरहा बाबा का उदाहरण सामने है। वह इस समय कम से कम डेढ़ सौ से अधिक वर्ष के हैं। शास्त्रीय नियम के अनुसार तो 'शतायु वैं पुरुषः' आदमी की आयु सौ वर्ष होती है। किन्तु खेचरी मुद्रा के प्रभाव से उनकी दीर्घायु है।

श्री वृन्दावन में हमें एक साधु मिला उनकी आयु एक सौ पच्चीस वर्ष की थी। उन्होंने बताया कि शीतली प्राणायाम के अभ्यास से ही उनकी इतनी आयु है।

योग दर्शन का लक्ष्य-प्रकृति और पुरुष अपने-अपने स्वरूप में आ जाये यही है। इनके अपने-अपने स्वरूप में अवस्थित होने पर ही केवलीभाव होता है। आत्मा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है। इसलिए इस पवित्र योगोपदेश को सुनकर अपने को अमरत्व की ओर ले जाओ। मनुष्य जीवन में ही इस प्रकार की कमाई की जा सकती है। मरने के समय जो दुःख होता है वह पाप का फल है। फल में भी बीज रहा करते हैं। जो पुनः दुःख देंगे। दुःखमयी वृत्ति से वैसे ही संस्कार बनें गे। पाप योनियों में चले जायेंगे। अतः सचेत हो जाओ। परम चेतन को प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील हो जाओ।

सब पर प्रभु जी की कृपा होगी। पूरा-पूरा आशीर्वाद !

※ ※ ※

ब्रह्म को जगत के सन्दर्भ में ईश्वर कहते हैं। ईश्वर के दर्शनों का स्थान आत्म साक्षात्कार की भूमिका से नीचे है। "मैं हूँ" ही साक्षात्कार है। साक्षात्कार की अवस्था तक निरन्तर साधनारत रहना ही विचार है। विचार तथा साक्षात्कार एक ही है। ध्यान हेतु किसी दृश्य की आवश्यकता है, जबकि विचार में दृष्टा ही है दृश्य नहीं। विचार और ध्यान में यही अन्तर है।

महायोग विद्या मार्ग और इसका प्रथम सोपान – श्री सिद्धयोग मासिक पत्रिका

प्रत्येक योग साधक की यह प्रथम जिज्ञासा होती है कि उसके अन्तःकरण को निर्मलता प्राप्त हो और चित्त प्रफुल्लित रहे। निर्मल चित्त ही प्रफुल्लित रह सकता है। जिस चित्त में निर्मलता का अभाव है वह चित्त अपने शाश्वत आनन्द को खोकर, राग-द्वेष, निन्दा-चुगली आदि अवगुणों के मल में निरन्तर सनता चला जाता है। किन्तु जीव का आत्मा तो परम पवित्र है वह परमात्मा के परम् तेज का एक अंश है जो सदा एक स्वरूप में रहने वाला तथा सुख-दुःख की अनुभूति से सदा रहित है। सदा आनन्द स्वरूप है जिसके प्रकाश से प्रकाशवान होकर जो जीवात्मा सदा परमात्म आनन्द में गोते लगाया करता था वह अब आज के युग में सांसारिक विषय सुख की इच्छा पूर्ति के कारण इतना मलयुक्त हो गया है कि क्षण भर की परम शान्ति और परम सुख के लिए भी, अत्यन्त दीन होकर मिथ्या गुरुओं की शरण में भटकता फिरता है।

ऐसे व्याकुल प्राणी को जब कोई कह देता है कि तुमको केवल योग मार्ग ही परम सुख प्रदान कर सकता है इसी मार्ग का अवलम्ब लेकर आज तक के सभी महान संत विश्व में अपना नाम सदा-सदा के लिए अमर कर गये हैं। इस प्रकार की अनेक प्रेरणाएँ पाकर, त्रितापों की भीषण ज्वालाओं से मुक्ति पाने हेतु तथा सद्गुरू के सानिध्य की शीतलता का आनन्द प्राप्त करने की प्रबुलाकांक्षा से साधकगण तुरन्त योगमार्ग की ओर आकृष्ट हो जाते हैं जो अपने आप में एक बहुत अच्छी बात है। कोई यदि आज के युग में योग मार्ग का जिज्ञासु बन जाता है तो उसके कहने ही क्या ? किन्तु योग मार्ग के प्रथम सम्पर्क में ही योग विद्या की उच्चस्तरीय भूमिकाओं अर्थात शीर्षस्थ सीढ़ियों पर छलांग लगा कर पहुँचने का निर्णय यदि कोई लेता है तो यह उस साधक के हित में कदापि नहीं होगा। अपने मनमाने ढंग से गुरु-गुरु चिल्लाकर और अनेकानेक प्रकार के कर्मकाण्डों से भोले लोगों को प्रभावित करके जो स्वयं को योग की उच्च स्थितियों में दिखलाने का मिथ्या प्रयास करते हैं उनको बाद में बहुत पछताना पड़ता है। योग तो परम पवित्र विद्या है। यह नकदधर्मी है। इधर निर्मलचित्त बनो, उधर योगनिधि प्राप्त करो। जैसे-जैसे साधकगण निर्मलचित्त होते जाते हैं, वैसे ही योगमार्ग की सीढ़ियों पर उत्तरोत्तर चढ़ते जाते हैं।

क्रोध क्या है ? यह अविद्या का विषाक्त रस है जो साधक की पुण्य शक्ति का नाश करता है और पतनगामी बना देता है। कामनाओं की पूर्ति न होने पर चित्त में क्रोध का विकार तुरन्त उत्पन्न हो ही जाता है। कामनाओं के पुण्य रजोगुणी चित्त के उद्यान में फलते-फूलते हैं।

लोगों की दृष्टि में कोई भी साधक कितना भी आगे क्यों न बढ़ जाये किन्तु यदि वह क्रोध के अधीन रहता है तो स्पष्ट है कि अभी उसके चित्त में निर्मलता नहीं है। तुच्छ बातों को लेकर अथवा मान-सम्मान की कामना की पूर्ति में विघ्न देखकर किसी व्यक्ति पर कोई साधक यदि क्रोध कर देता है तो वह तुरन्त शक्ति से खाली हो जाता है। काम तथा लोभ भी ऐसा ही फल देते हैं अतः काम, क्रोध और लोभ को नरक के द्वार कहा गया है। सिद्धपीठ अथवा गुरु स्थानों पर भी कोई अपने क्रोध को नियन्त्रण में नहीं रख पाता है तो इसका अर्थ है कि उसमें रजोगुण मल की प्रधानता है। इसी प्रकार यदि आलस्य-प्रमाद किसी साधक को अत्यधिक सता रहा है तो समझना चाहिए कि उसमें तमोगुण का मल विशेष रूप से व्याप्त है। रज और तम ये दो भयंकर मल साधक की साधना में विशेष विघ्नकारी हैं। मल स्वरूप तो सतोगुण भी है किन्तु वह साधक को योग की उच्च कक्षाओं में पहुँचाने में सहयोग करता है अतः चित्त में सतोगुण का निर्माण करना अति आवश्यक होता है। बाद में परमोत्कृष्ट स्थिति के साधकों को कैवल्य हेतु सतोगुण भी त्यागना होता है।

कहने का तात्पर्य यह है कि साधक को रज व तम दोनों ही मलों को अपने चित्त से हमेशा के लिए धो देना चाहिए। कलिकाल में सतोगुण गौण स्थिति में पहुँच गया है। हर चित्त में रज और तम का ही बोलबाला है। तब निर्मलता चित्त को कैसे प्राप्त हो ? जिसकी सहायता से साधक को योग विद्या का निर्विघ्न पथ प्राप्त हो सके।

इसके उत्तर में योगेश्वर श्री कृष्ण चन्द्र भगवान ने महात्मा अर्जुन को उपदेश किया कि हे अर्जुन ! सुनो-

यज्ञ दान तपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्।।

अर्थात-यज्ञ, दान और तपरूप कर्म त्याग करने योग्य नहीं है। बल्कि वह तो आवश्यक कर्तव्य कर्म है। यज्ञ, दान और तप ये तीनों ही कर्म बुद्धिमान् पुरुषों को पवित्र करने वाले हैं।

स्पष्ट है कि अन्तःकरण की निर्मलता हेतु यज्ञ, दान और तप रूप कर्म विशेष महत्वपूर्ण हैं। किन्तु उपरोक्त प्रकार के तीनों आवश्यक कर्म केवल निर्मल (सात्विक) बुद्धि के द्वारा ही सम्पन्न किये जा सकते हैं। कारण सात्विक बुद्धि यथार्थ को समझने वाली होती है। सात्विक बुद्धि के सम्बन्ध में भगवान कहते हैं-

प्रवृतिं च निवृतिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्विकी।।

अर्थात्-हे पार्थ ! जो बुद्धि प्रवृत्ति मार्ग और निवृति मार्ग को कर्तव्य और अकर्तव्य को भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को यथार्थ जानती है-वह बुद्धि सात्विकी है।

इसके विपरीत मलिन बुद्धि वाले अज्ञानी यथार्थ को नहीं समझते। अविद्या के वशीभूत रहने के कारण उनके धार्मिक कार्य भी अहितकारी ही सिद्ध होते हैं। मलिन बुद्धि के विषय में योगेश्वर श्री कृष्ण भगवान अर्जुन से कहते हैं-

तत्रैव सति कर्तारमात्मानं केवलं तु यः।
पश्यत्यकृत बुद्धित्वान्न स पश्यति दुर्मतिः।।

अर्थात्-परन्तु ऐसा होने पर भी जो मनुष्य अशुद्ध बुद्धि होने के कारण उस विषय में यानि कर्मों के होने में केवल शुद्ध स्वरूप आत्मा को कर्त्ता समझता है वह मलिन बुद्धिवाला अज्ञानी यथार्थ नहीं समझता है।

रज और तम से रहित निर्मल बुद्धि जब तक मनुष्य को प्राप्त नहीं होती है तब तक वह यज्ञ, दान और तप रूप कर्मों को बुद्धि की अज्ञानता के कारण धर्मानुकूल नहीं बना सकेगा। वह मनमुखी होकर यदि इन पवित्रता देने वाले कर्मों को करेगा भी तो बजाय लाभ के केवल हानि ही प्राप्त करेगा।

यज्ञ, दान और तप के द्वारा अन्तःकरण को शुद्ध बनाने से पहले बुद्धि को भी निर्मल (सात्विक) कर लिया जाय तो यह साधक के लिए अति उत्तम होगा। दूसरे शब्दों में कह सकते हैं कि निर्मल बुद्धि हमारे लिए उपयुक्त गाइड के रूप में होती है जो हमें योग मार्ग पर आरुढ़ रख कर सफलता प्रदान कराने के लिए उचित ढंग से निर्देशित करती है। निर्मल बुद्धि को प्राप्त करने वाले बड़े ही सरल ढंग से अन्तःकरण को शुद्ध करने वाले कर्मों को भली भाँति धर्मानुकूल बना कर सम्पन्न कर लेते हैं।

तब निर्मल बुद्धि कैसे प्राप्त की जाय ? उक्त समस्या के समाधान के अन्तर्गत अनेकानेक शास्त्र सम्मत उपाय हैं जिनमें सत्संग और सद्ग्रन्थों का नियमित पठन-पाठन अर्थात् स्वाध्याय प्रमुख है। सत्संग (महापुरुषों का संग) तो हम लोगों ने अखण्ड मण्डलाकार श्री महाप्रभुजी व श्रीकृष्ण स्वरूप पूज्य गुरूदेव जी का प्राप्त कर ही लिया है। इतना पवित्र सत्संग हमको प्राप्त हुआ है। यह अत्यन्त दुर्लभ उपलब्धि है। रही बात स्वाध्याय की इसके लिए गुरुमंत्र जप ही सर्वश्रेष्ठ साध न है किन्तु रज और तम के वशीभूत चित्त के शुद्ध न रहने से साधारण जनमानस का जीभ से नियमित गुरु मंत्र जप करने में भी मन नहीं लगता। रजोगुण के कारण अनेक चिन्ताओं के रहते गृहस्थों के लिए यह सम्भव नहीं हो पाता। दूसरे तमोगुण इतना आलस्य प्रमाद देता है कि मंत्रजप शुरू करते ही निद्रा अपने स्नेहपाश में भर लेती है। ऐसी स्थिति में ध्यान की तो कल्पना करना ही व्यर्थ है।

योग मार्ग में सर्वोत्कृष्ट सफलता तो गुरुमंत्र जप और ध्यान योग के द्वारा ही प्राप्त होगी, किन्तु

निर्मल बुद्धि प्राप्त करने हेतु उक्त दोनों विषयों में हमारा अत्यधिक मन लग सके इसके लिए सबसे सरल साधन केवल मात्र **सिद्धयोग** पत्रिका का नियमित पाठक बनना है।

आज के युग में हम सभी को सिद्धयोग पत्रिका का नियमित स्वाध्याय करना बहुत जरूरी है। ऐसा करना हम सभी के लिए परम हितकारी है। इस घोर कलिकाल में प्रत्येक व्यक्ति का अन्तःकरण रज व तम के दुष्प्रभाव से सुरक्षित नहीं है। पूर्ण सतोगुण से चमकते हुए एकाग्रता के धनी संयमनिष्ठ संसार सिंह जैसे कुछ बिरले ही गुरूभाई परम पूज्य गुरूदेव की शरण में आये जो तत्काल उनका परम आशीर्वाद प्रसाद पाकर तत्काल अपने परम् लक्ष्य की ओर बढ़ गये। योग की उत्कृष्ट उपलब्धियों की ओर दृष्टि करने से पहले हम यह देखें कि हमारी स्थिति क्या है ? हम कहाँ पर खड़े हैं ? तब अधिकांश लोग पायेंगे कि वे अभी योग मार्ग के प्रवेशद्वार पर ही भटक रहे हैं।

परम पूज्य गुरुदेव भगवान अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक अपने समस्त शिष्य समुदाय को गुरुमंत्र जप और ध्यानयोग की महिमा को समझाते रहे और हम लोग प्रबल ध्यानाभ्यासी हों इस बात पर निरन्तर बल देते रहे, किन्तु फिर भी उन्होंने श्री सिद्धयोग पत्रिका की आवश्यकता को महसूस किया और इसके प्रकाशन का विचार बनाया। इसका मूल कारण योग सिद्धान्तों के प्रति हमारे मन का एकाग्रचित्त होकर पूर्ण श्रद्धा व रुचि के साथ आकृष्ट न होना ही था। उन्होंने अपने मनमुखी बालकों की विकृत चित्तवृत्तियों को देखकर ही यह श्री सिद्धयोग पत्रिका जैसा सरल उपाय हमारे समक्ष रखा।

'सिद्धयोग' नामक यह वृक्ष अपनी आयु के ३४वें वर्ष में प्रवेश कर रहा है। यह आनन्द कन्द गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का संकल्प है। सिद्धयोग परम्परा से ही अनादिकाल से योगधारा अक्षुण्ण रूप से प्रवाहमान है। इस पत्रिका का परम उद्देश्य है–साधकों को योग मार्ग के अनेक विघ्नों से बचाते हुये उन्हें योग मार्ग पर सफलतापूर्वक गतिमान रखना, समस्त योग सिद्धान्तों को अधिकारी साधकों के मानस क्षेत्र तक पहुँचाना और भ्रमित, विचलित, मनमुखी साधकों को पुनः पुनः योग मार्ग से जोड़ना आदि।

इसको मात्र पत्रिका समझकर नहीं बल्कि पूज्य गुरुदेव जी का प्रसाद समझकर श्रद्धायुक्त होकर बार-बार पढ़ें यही उत्तम स्वाध्याय की प्रभावी व्यवस्था है। इसके माध्यम से गुरुदेव की कृपा वर्षा अपने भक्तों पर होती ही है। इस पवित्र पत्रिका का नियमित पठन -पाठन ही वह साधन है जो साधक के मन मन्दिर को स्वच्छ करके, योग विद्या जैसी परम् निधि को संचित करने हेतु, परम् प्रभुजी को उसमें विराजमान होने के लिए आमंत्रित करती है। यह अनेक गुरुभक्तों के अनुभव की बात है कि इसके श्रद्धापूर्ण स्वाध्याय से मन व बुद्धि निःसन्देह निर्मल तो होते ही हैं, साथ ही योग एवं गुरुदेव के चरण कमलों की भक्ति भी अपने प्रबल वेग से बढ़ती चली जाती है। चूँकि यह

दिव्य पत्रिका साधकों के लिए योग विद्या की आधार भूमि का निर्माण करती है अतः यही योग मार्ग का वह प्रथम सोपान है जहाँ पर ठीक प्रकार से पैर जमा कर खड़े होने वाले व्यक्ति बिना भटके ही अपने परम् लक्ष्य की ओर बढ़ जाते हैं। शुरूआत में ही जल्दबाजी करने वाले व अपरिपक्व श्रद्धा से छलांग लगाने वालों की ऊपर चढ़कर नीचे गिरने की आशंका बनी ही रहती है। साधना काल के दौरान अन्य लोगों के सम्पर्क में आने से साधकों में अनेक भ्रांतियाँ पैदा हो जाती हैं जिनका उन्मूलन करना तथा योग के वास्तविक स्वरूप को प्रतिपादित कर इसके यथार्थ स्वरूप का बोध कराना ही इसका परम लक्ष्य है।

आज गुरुदेव ने जिस लक्ष्य को सामने रखकर इस पत्रिका का सूत्रपात किया है वह अपने लक्ष्य के अनुरूप चलते हुए साधकों के सर्वतोमुखी कल्याण के लिए निरन्तर अग्रसर है। अविद्या ही जीव के क्लेशों का मूल है। अविद्या अन्धकार समूह का नाश इसके स्वाध्याय से ही हो जाता है। इसके चिन्तन-मनन से साधकों के मन में स्वतः ही ज्ञान का दीप प्रज्वलित हो जाता है। यह वह गंगा है जिसमें गोता लगाकर लाखों-लाखों जीव विगत कल्मष होकर अमरपद को प्राप्त हो जाते हैं।

सिद्धयोग परम्परा योग. विद्या प्राप्ति का वह मार्ग है जिसमें पूर्ण गुरुदेव की सिद्ध कृपा से साधकों में तत्क्षण शक्तियों का उदय हो जाता है और वह योग की ऊँची से ऊँची स्थिति को अनायास ही पा जाता है। इस प्रकार की कृपा को प्राप्त करने के लिए मनुष्य का अन्तःकरण शुद्ध होना एवं प्रबल पुण्य राशि का होना आवश्यक होता है। सिद्धयोग पत्रिका में प्रकाशित विषय सामिग्री का चिन्तन-मनन इस दिशा में एक सशक्त कदम है प्रथम सोपान स्वरूप यह दिव्य पत्रिका योग साधकों के लिए अत्यन्त उपयोगी है। बहुदा देखा जाता है कि बहुत से लोगों को इसका मनन करते हुये आनन्द कन्द श्री प्रभुजी की कृपा एवं उनके दिव्यानुभव शुरू में ही प्राप्त हो जाते हैं। बहुत प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ती। ऐसा इस पत्रिका का दिव्य प्रभाव है।

अतः यह महान पत्रिका जो गुरुदेव का ही साक्षात स्वरूप है, अधिकाधिक लोगों को लाभान्वित कर सके इस हेतु सभी सिद्धयोग के प्रिय पाठकों से सादर अनुरोध है कि इस महत्वपूर्ण पत्रिका के दिव्य प्रभाव से नये पुराने सभी गुरुभक्तों को अवगत करायें। गुरु महिमा व श्रीमहाप्रभु जी एवं पूज्य गुरुदेव जी का गुणानवाद करके पत्रिका की सर्वांगीण उपयोगिता का प्रचार करें उन्हें सिद्धयोग पत्रिका आजीवन अथवा वार्षिक सदस्य बनने की प्रेरणा प्रदान करें ताकि हम लोगों की तरह हमारे अन्य गुरु भाई-बहनों को भी इसका उचित लाभ प्राप्त हो सके। यह हमारा और आपका पूज्य श्री के बालक होने के नाते कर्तव्य कर्म बन पड़ता है।

यह परमार्थ कर्म करके हम सभी श्री प्रभु जी की अहैतुकी कृपाओं को प्राप्त करेंगे ही करेंगे इसमें कोई सन्देह नहीं है।

※ ※ ※

सबसे बड़े देव - श्री गुरूदेव

केशवदेव उपाध्याय, वाराणसी

प्रयागराज की धरती का आध्यात्मिक जगत में अपना विशेष स्थान है। श्री गंगा, यमुना एवं सरस्वती जैसी पवित्र नदियों के पावन संगम का श्रेय भी इसी क्षेत्र को प्राप्त है। प्रत्येक वर्ष इन नदियों के संगम वाले क्षेत्र के चारों तरफ एक महान आध्यात्मिक मेला लगता है, जिसे कुम्भ मेला, कुम्भ महामेला या माघ मेला के नाम से पुकारा जाता है। यह मेला करीब एक माह तक रहता है। इस माघ मेले में मुख्य स्नान का पर्व मकर संक्रान्ति, माघी अमावस्या, बसन्त पंचमी एवं माघी पूर्णिमा है। इन तिथियों पर संगम में स्नान का विशेष महत्व है। श्री राम चरित मानस में इस स्थान का वर्णन करते समय कवीश्वर श्री तुलसी दासजी ने लिखा है कि

"माघ मकर जब रविगति होई,
तीरथपतिहि आव सब कोई।"

यों तो प्रत्येक साल यह अपनी निर्धारित तिथि पर ही लगता है फिर भी इसका मुख्य समय दस जनवरी से दस फरवरी के मध्य में पड़ता है। इस एक महिने की अवधि में पूरे समय तक लोग इस क्षेत्र में निवास करते हैं। दोनों समय पवित्र संगम में स्नान करते है तथा अपना पूरा समय जप-ध्यान-आरती-पूजा में ही लगाते हैं। इस प्रकार की दिनचर्या वाले प्राणियों को कल्पवासी कहा जाता है। आराध्यदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज बहुत पहले से योग प्रचारार्थ इस आध्यात्मिक मेले में कैम्प लगाकर निवास करते थे तथा योग प्रचार कार्य किया करते थे। आराध्यदेव श्री सद्गुरुदेव जी महाराज के लीलावसान के बाद भी प्रयागराज के हमारे आदरणीय गुरूभाई-बहनों द्वारा यह आयोजन किया जाता रहा है एवं इस समय भी किया जा रहा है। इस माघ मेला शिविर में इलाहाबाद शहर एवं देहात के गुरूभाई-बहन तो सुबह-सायं इस योग प्रचार कार्यक्रम का लाभ उठाते हैं परन्तु बाहर से आने वाले गुरूभाई-बहन इस योग शिविर में निवास करते हैं एवं योग साध ना करके अपना जीवन योग परायण बनाते हैं। इसी क्षेत्र के हमारे एक आदरणीय गुरूभाई हैं जिनका नाम श्री राजाराम यादव है। ये संगम क्षेत्र के करीब ही रामनाथपुर गाँव के निवासी हैं। वे इसी शहर इलाहाबाद में ही सरकारी नौकरी करते हैं। आदरणीय भाई श्री राजाराम जी आराध्यदेव जी से सपत्नीक दीक्षित हैं। ये दम्पत्ति दीक्षा के बाद अपने घर में श्री गुरूदेव जी महाराव एवं महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के स्वरूपों को बिराजमान करके दोनों समय प्रातः एवं सायंकाल विधि-विधान से आरती-पूजन एवं ध्यान किया करते हैं। इस कार्य में इनकी पत्नी भी पूरा-पूरा इनका साथ देती है। आदरणीय भाई श्री राजाराम जी नियमित ध्यानाभ्यासी योगी साधक हैं। इनकी धर्म परायण धर्मपत्नी के साथ आराध्यदेव श्री चन्द्र मोहन जी महाराज के चरणों में श्रद्धाभाव बढ़ाने वाली एक अलौकिक कृपा हुयी, जिसका वर्णन हम सभी प्रभु जी के शिष्यों के लिये प्रेरक प्रसंग का ही कार्य करेगा।

प्राणी मात्र का मन चंचल है एवं सदैव चंचल ही बना रहना चाहता है। इस मन का एक ही गुण एवं एक ही दुर्गुण मुख्य है। मन का यह गुण है कि यह एक साथ, एक ही विचारधारा अपने अन्दर रख सकता है। एक ही साथ यह दो बातों या दो प्रकार की विचार धाराओं को अपने पास नहीं रख सकता। मन का दुर्गुण यह है कि यह अपना स्वाद जल्दी-जल्दी बदलने का अभ्यासी है। अपने इसी दुर्गुण के कारण, यह महान चंचल भी है योग की साधना करने वाले साधक अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा इसे स्थिर करने का प्रयास करते हैं। निरन्तर अभ्यास एवं वैराग्य द्वारा यह वश में हो भी जाता है। इसके बाद मन के गुण (एक समय में केवल एक ही विचारधारा रखने का गुण) के सिद्धान्त का लाभ उठाकर साधक लोग निरन्तर अभ्यास द्वारा श्री गुरूदेव भगवान की कृपा से अपने को योगी बना लेते हैं। तदन्तर वे अनेकानेक अलौकिक शक्तियों के स्वामी बन जाया करते हैं। आदरणीय भाई श्री राजाराम जी का मन एकाग्र है और इन्हें आराध्यदेव श्री सद्गुरूदेव जी महाराज के चरण कमलों के अलावा और किसी के प्रति श्रद्धा एवं समर्पण के भाव नहीं हैं।

महिलाओं का हृदय सरल एवं भावना प्रदान होता है। इसी सिद्धान्त के परिणाम स्वरूप इनकी धर्मपत्नी भी सरल एवं भावुक प्रवृत्ति की महिला है। इनकी धर्मपत्नी, योगेश्वर सद्गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के अलावा अन्य देवी देवताओं एवं सन्त महात्माओं के प्रति भी महान आदर एवं श्रद्धा का भाव रखती है। प्रसंग आज से करीब चौदह-पन्द्रह वर्ष पूर्व का है। इनके गाँव की कुछ महिलाओं ने आदि शक्ति स्वरूपा माँ मैहर देवी के दर्शनार्थ जाने का प्रोग्राम बनाया था। गाँव की इस महिला समुदाय ने इनसे भी माँ मैहर देवी के दर्शनार्थ चलने की बात कही। इस देवी ने पहले तो साफ-साफ इन्कार कर दिया। बाद में गाँव की इस महिला समुदाय की नेत्री ने मैहर देवी की अतुलित शक्ति एवं उनके द्वारा अपने भक्तों पर की गयी कृपाओं का सविस्तार वर्णन किया तो इनके मन में भी माँ मैहर देवी के दर्शन पाने की लालसा बलवती हो गयी। जब इन्होंने माँ मैहर देवी के दर्शनार्थ जाने की बात अपने पतिदेव से निवेदित की तो इनके पतिदेव ने समझाया कि श्री सद्गुरूदेव भगवान के चरण कमलों में श्रद्धा भाव रखने वाले जीव से सभी देवता-देवी स्वयं ही प्रसन्न होकर दर्शन तथा आशीर्वाद दिया करते हैं। श्री सद्गुरूदेव की सत्ता में ही सभी देवी-देवताओं की शक्ति एवं सामर्थ्य समाहित होती है। श्री सद्गुरूदेव से बड़ा कोई तत्व नहीं है एवं सभी देवी-देवता उस परासत्ता को नमन करते हैं। आदरणीय भाई श्री राजाराम जी ने शास्त्र सम्मत अनेक उदाहरण देकर अपनी भार्या को यह समझाया। यह बात उनकी पत्नी की समझ में आ भी गयी परन्तु उन्होंने प्रार्थना की कि पतिदेव, पता नहीं क्यों; मुझे ऐसी चाह है कि मैं यथाशीघ्र मैहर देवी के दर्शन प्राप्त कर लूँ। अपनी पत्नी की ये सरल बातें सुनकर, भाई जी ने उन्हें फिर गुरूसत्ता के ताकत की बात समझायी परन्तु अपने पतिदेव से, ये बार-बार मैहर देवी के दर्शनार्थ जाने की प्रार्थना करती रहीं। अन्त में आदरणीय भाई श्री राजाराम जी ने उन्हें मैहर देवी के दर्शनार्थ जाने की आज्ञा प्रदान कर दी।

धीरे-धीरे वह दिन भी आ गया, जिस दिन गाँव की महिलाओं के साथ; इन्हें श्री मैहर देवी के दर्शनार्थ जाना था। नित्य की तरह स्नान-शौचादि से निवृत्त होकर ये घर से निकल कर, उस स्थान पर जाने की तैयारी करने लगीं; जहाँ इनके गाँव के लोग श्री मैहर देवी के दर्शनार्थ जाने के लिये एकत्र हुये थे। अपनी यात्रा का सामान एवं वस्त्र लेकर ये ज्योंही अपने मुख्य द्वार को पार करना चाहती थीं कि इन्होंने खुली आँखों से देखा कि दरवाजे पर एक देवी अपने पूर्णरूप में स्थूल शरीर से विद्यमान है। देवी का शरीर बड़ा ही दिव्य था एवं उनके स्थूल शरीर से निकलने वाली प्रकाश की किरणों से आस-पास का पूरा वातावरण देदीप्यमान हो रहा था। हमारी गुरू बहन 'किम् कर्तव्य विमूढ़'' होकर टकटकी लगाकर यह दृश्य देख रही थीं। ये पहचान भी नहीं पायीं कि यह दिव्य स्वरूपा देवी कौन है। तदन्तर जगत-जननी माँ मैहर देवी ने स्वयं अपने मुखारविन्द से, मधुर मुस्कान के साथ कहा-बेटी ! मैं ही मैहर देवी हूँ जिनके दर्शनार्थ तुम अपने गाँव की महिलाओं के साथ जा रही हो। मुझे प्रणाम करो। माता जी की ये अमृतमयी बातें सुनकर आदरणीया बहन जी की भाव-भंगिमा भंग हुयी एवं इन्होंने माँ मैहर देवी को साष्टांग प्रणाम किया। इसके बाद माँ मैहर देवी ने अनेक आशीर्वाद दिये। माँ मैहर देवी ने बतलाया कि तुम्हारे पतिदेव जो तुम्हें समझा रहे थे, वे बिल्कुल-बिल्कुल सत्य तथ्य ही समझा रहे थे। यह बात बिल्कुल सत्य है कि श्री गुरूदेव भगवान में श्रद्धाभाव रखने, उनका आरती-पूजन करने और उनका ध्यान करने पर अन्य सभी देवी-देवताओं की पूजा स्वतः हो जाती है, वे लोग प्रसन्न होकर साधक को दर्शन एवं आशीर्वाद तथा वरदान दिया करते हैं। मैंने बिल्कुल सत्य बात, जो शत प्रतिशतः सत्य है, तुम्हें बतला दी है। आगे माँ मैहर देवी ने अपने मुखार बिन्दु से बतलाया कि मैं जिसकी पूजा-अर्चना, चिन्तन-मनन एवं ध्यान करती हूँ, वे और कोई नहीं बल्कि सदैव वन्दनीय तुम्हारे दादा गुरूदेव परम योग योगेश्वर अकारण दयालु महाप्रभु श्री रामलाल जी ही हैं, जिन्हें हम देवगण महावतार बाबा जी कहकर सम्बोधित करते हैं। इतना कहकर मैहर देवी ने कहा कि अब मैं अपने धाम को जा रही हूँ। उनकी यह बात सुनकर-आदरणीया बहन ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया, माँ ने अपना वरद हस्त उठाकर आशीर्वाद दिया एवं अन्तर्ध्यान हो गयीं।

आदरणीया बहन जी ने जब यह बात अपने पतिदेव को सप्रेम बतलायी तो अन्तिम घटना क्रम सुनते समय उनकी आँखें स्वतः बन्द हो गयीं एवं वे काफी समय तक ध्यानस्थ रहे। ध्यान से उठने के बाद, बार-बार भगवान शिव द्वारा प्रतिपादित यह श्लोक बोलते रहे :-

सत्यं-सत्यं पुनः सत्यं,
धर्मशास्त्रं मयोदितम् ।
गुरूगीता समं नास्ति,
नास्ति तत्वं गुरोःपरम्।।

***

हे अखण्ड ज्योति गुरुवर !

गुरुदेव की लीला का, गुणगान जो करते हैं।
पुण्यों से झोलीभर कर, मुक्ति को वरते हैं।।
हैं अखण्ड ज्योति गुरुवर, शक्ति के दानी हैं।
देते शक्ति उनको, जो नहीं अभिमानी हैं।।
अपने तन मन को, जो समर्पित करते हैं।
पुण्यों से झोलीभर कर, मुक्ति को वरते हैं ।।१।।

दुष्ट, कुकर्मी, पापी, जो शरण में आया है।
भोलेनाथ ने उसके, पापों को घटाया है।।
अपने पापों का, पश्चाताप जो करते हैं।
पुण्यों से झोली भरकर, मुक्ति को वरते हैं।।२।।

गुरुजी के दर्शन से, मन हर्षित होता है।
जग जाता है भाग्य जो, सदियों से सोता है।।
श्रद्धावान शिष्य गुरु को, हर्षित करते हैं।
पुण्यों से झोली भरकर, मुक्ति को वरते हैं।।३।।

जिधर देखो उधर, गुरुवर का नजारा है।
हमने तो देखा है, चहुँ ओर पसारा है।।
राम, कृष्ण, ऋषिगण, सब सेवा करते हैं।
पुण्यों से झोली, भरकर, मुक्ति को वरते हैं।।४।।

गुरुदेव की लीला का, नहीं पार पाया है।
मारग में पड़े काँच को, कञ्चन बनाया है।।
चल 'कृष्ण' गुरु शरण में, नमन करते हैं।
पुण्यों से झोली भरकर, मुक्ति को वरते हैं।।५।।

डा० कृष्णवीर सिंह तोमर
धरैरा (आगरा)

सिद्धों की कृपा स्थली और सिद्धयोग की साधना प्रणाली का एक परिदृश्य

प्रेषक -प्रो० चन्द्रहास शर्मा, दिल्ली

(गतांक से आगे)

श्री सदाशिव बाबा द्वारा दिव्य सिद्धों का दरबार : संदेश

''श्री सदाशिव बाबा ने मुझ जैसे अवगुणों से भरे हुये जीव को समाधि अवस्था में आज्ञा दी कि २३ नवम्बर को तुम्हारी भिक्षा है उस उपलक्ष में तुम्हें कुछ शब्द बोलने हैं। मुझ में क्या सामर्थ्य है कि मैं कुछ शब्द कहूँ क्योंकि ना ही मैं महात्मा हूँ, न ही ज्ञानी और ना ही विद्वान। 'मैं' तो उस परमपिता के चरणों की धूल भी नहीं। कभी वे करुणा-निधान अपने चरणों की सरोज रज बना लें तो परम सौभाग्य समझूँगा।

परन्तु मुझे विश्वास था कि उन्होंने आज्ञा दी है तो पालन भी वही करवायेंगे। वही उन की आज्ञा के अनुरूप कुछ शब्द लिखे जा रहे हैं। क्योंकि जब वह पैन और कापी मेरे हाथ में दे देते हैं तो मुझे भी ज्ञान नहीं होता क्या लिखना है। वह लिखवाते रहते हैं और मैं पुतले की तरह बैठा लिखता रहता हूँ। उस दिन उनकी कृपा से कुछ शब्द बोल दिये। दो दिन के बाद फिर आदेश हुआ कि जो गुप्त बातें मैंने बताई हैं। उन को और जो शब्द बोले हैं उन का समावेश करके संयोजित ढंग से लिखो फिर इसे सिद्धयोग पत्रिका में छपवाने के लिये भेजो।

उन के शब्दों का समावेश और वह भी संयोजित ढंग से होना असम्भव सा है। वह चाहें तभी हो सकता है।

वह मैं नहीं जानता कि प्रभुजी ने मुझे यह सौभाग्य क्यों दिया कि आप के सामने कुछ शब्द कहूँ पर मेरी सोच जहाँ तक है वह यह समझती है कि उन्होंने मुझे माध्यम बना कर यह बताने की

प्राचीन बटवृक्ष के आधार में विराजमान भगवान सदाशिव

सदाशिव सिद्धयोग मंदिर

कृपा की कि आप सभी आंखें खोलकर भी नींद में हैं। क्योंकि उपदेश प्रवचन हर रोज दिये जाते हैं। परन्तु इन शब्दों का अपना ही महत्व है। क्योंकि यह शब्द बाबा ने लिखवाये हैं। इन शब्दों को शायद कुछ ही व्यक्ति समझ पायें, पर आज हर व्यक्ति यही सोचे कि मैं ही वह व्यक्ति हूँ जो समझ सकता हूँ तो सभी उसकी गहराईयों तक पहुँच जायेंगे। यह सभी शब्द सत्य पर आधारित हैं। बाबा कहते हैं। इस रचना के बारे में जो ३, ६ महीने लगातार समाधि में बैठे रहते हैं, सिर्फ एक बार उठते हैं वह भी सिर्फ इसका एक अंश ही बता पायेंगे तो मैं और आप हैं क्या ? क्योंकि यहाँ पर जो भी आदेश हुये श्री सदाशिव बाबा ने दिये। मुझे इस बात का ज्ञान नहीं कि उन्होंने शुरू से ही मेरे मन में (श्री सदाशिव बाबा, महाप्रभु जी, प्रभुजी) यह भाव दिये कि प्रभु जी कहो। क्योंकि मेरी दृष्टि में तो प्रकाश एक ही श्री सदाशिव बाबा का है। जिस से सभी प्रकाशित हैं। यह भी उनकी लीला थी कि प्रभु जी के भाव आये इस बात का मुझे अभी थोड़ा बहुत ज्ञान हो रहा है।

अब इस पवित्र स्थान के बारे में बाबा कहलवाना चाह रहे हैं। चारों तरफ पर्वतों से घिरा हुआ एक छोटा सा शहर काँगड़ा। एकान्त स्थान पर टीले पर विराजमान श्री सदाशिव मन्दिर जहाँ पर श्री सदाशिव बाबा, महाप्रभु जी, प्रभु जी की अपार कृपायें। सुना था सिद्ध पुरुष यहाँ पर विचरते रहते हैं। पर बाबा कहते हैं, सिद्धों ने यहाँ तो डेरा लगा दिया है। आज के समय में यह स्थान इतना पवित्र है जितना मेरी जटाओं से गंगा बहती है वह भी स्थान इतना पवित्र नहीं। बाबा ने ऐसी विडम्बना रची कि लोग यहाँ पर योग शब्द भी नहीं जानते। सबसे गुप्त स्थान चुना अपनी रचना के लिये। जिसने सभी को अचम्भित कर दिया है। यह सब उन की लीलायें हैं। वही जाने या जिसे जना दें। बाबा कहते हैं। काँगड़ा की गूँज काँगड़ा या भारतवर्ष तक ही नहीं, सारे विश्व में फैल जायेगी। कृपायें तो हो ही रही हैं। बाद में बाबा ने दिव्य पूजन से २८ दिसम्बर १९९९ को सिद्ध पीठ बना दिया। फिर गुरु पूर्णिमा को १००८ शिवलिंग विराजमान करवा के सिद्धों का दरबार नाम दे दिया।

मुझे इस बात का कभी ज्ञान भी नहीं था और न ही शायद किसी ने कल्पना की थी कि आज वो दिन आ जायेगा कि जब सृष्टि के रचनाकार श्री सदाशिव बाबा मुझ जैसे दोषों से परिपूर्ण जीव को इतना प्रेम देकर के विचित्र (शब्द) ही कह सकता हूँ क्योंकि जिव्हा यहाँ तक ही कह सकती है, बुद्धि यहाँ तक सोच सकती है, भिन्ना के लिये मुझे इसके काबिल समझा। उन के चरणों में मेरा कोटि-कोटि दण्डवत प्रणाम है। हालांकि यह बातें बुद्धि शब्दों से परे है। उस माँ को मैं बार-बार प्रणाम करता हूँ। जिस के गर्भ से उत्पन्न हुआ और यह जन्म धन्य-धन्य हो गया।

जब भिक्षा का आदेश हुआ तो तभी सब सोच रहे थे भिक्षा में क्या अर्पण किया जाये पर बाबा ने अनोखे ढंग से रचकर सभी का समाधान कर दिया और यह भी कह दिया ऐसी भिक्षा न तो आज तक हुई है और न ही भविष्य में होगी। इसमें सभी को एक कलीरा (कलावा) उसमें ११ कोड़ियाँ, एक गिरी का गोला, एक बादाम, एक छुआरा १०८ दाने चावल के देने का आदेश दिया।

मेरा बीता हुआ समय क्या था जीवन के २६ वर्ष सिर्फ अन्धकार में ही घूम रहा था। उस ज्योति की तलाश में लेकिन ढूंढ नहीं पाया। मेरा लक्ष्य सिर्फ मेरे पिता जी का ठीक होना था क्योंकि माँ ने कभी सुख शब्द का अहसास नहीं किया। मेरा हर सम्भव प्रयास यही था कि उन्हें सुख मिले पर उसमें नाकाम रहा। हर किसी व्यक्ति के आगे नतमस्तक हुआ कि आप अपनी शक्ति से उन्हें ठीक कर दें मैं सारा जीवन आपका नौकर बनकर रहूँगा। पर ऐसा कहीं नहीं हुआ। बड़े-बड़े शहरों

से लेकर छोटे-छोटे गाँवों तक घूमा लेकिन निराशा ही हाथ लगी। क्योंकि सत्य कुछ और था उस परमपिता को मैं जानता नहीं था क्योंकि तब अपने अन्दर 'मैं' शब्द था मैं कर रहा हूँ, घूम रहा हूँ।

Engg. की Degree भी हो गई। कुछ समय तक नौकरी भी की Bombay, Bangalore, Goa फिर एक दम मन में विचार आया कि इतनी दूर क्यों घूम रहा हूँ। चलो हिमाचल वहीं पर कुछ देखेंगे। यहाँ पर पहुँचने के बाद यही सोचा कि अब नौकरी करनी है तो यहीं और कहीं नहीं। माँ बाप की देखभाल करूँगा। दीदी की शादी की चिन्ता भी थी। मुझ से बढ़ कर माँ को। यह तब का वाकया है जब मैं सिर्फ अन्धकार में ही घूम रहा था।

फिर वह दिन भी आ गया १२ सितम्बर १९९८ को जब मैं स्वामी जी के घर गया किसी काम से। उन्होंने कहा कल मन्दिर आ जाना तब मुझे कुछ भी ज्ञान नहीं था योग क्या है। शायद २६ वर्ष में योग शब्द भी नहीं सुना था।

मेरा बचपन से ही स्वभाव रहा सेवा, प्रेम का। पर मैंने देख लिया था संसार में रिश्तेदार दोस्त कोई किसी का नहीं सब दिखावा है। मैं प्रेम सभी से करता था पर सब मुझ से स्वार्थ के लिये करते थे प्रेम। इससे मेरा मन खिन्न हो जाता था और धीरे-धीरे मेरी आदत निष्काम प्रेम की हो गई।

यहाँ पर स्वामी जी का समर्पण प्रभु चरणों में देख कर लगा कि इनका प्रेम निस्वार्थ है। मैंने यही सोचा जो भी वह कहेंगे वही मानूँगा। फिर रोज सुबह ५ बजे घर से आना और ९ बजे वापिस चले जाना। बस नियम बना लिया, मेरा घर मन्दिर से १७ किमी० की दूरी पर था पर यहाँ पर आने से एक अजीब सा खिंचाव था क्योंकि प्रभुजी, महाप्रभुजी को तो मैं जानता नहीं था यहाँ पर आता था तो मन में कभी इच्छा भी नहीं कि ध्यान लग जाये बस आना है और सेवा करनी है। क्योंकि सेवा में मुझे एक अलग सी मस्ती लगती थी वही वह करवाते थे। फिर १ नवम्बर १९९८ को प्रभु जी के जन्म दिवस के शुभ अवसर पर स्वामी जी ने मन्त्र दिया। मन्त्र का क्या महत्व है न जानता ही था और उसके बाद भी कभी जानने की इच्छा नहीं हुई। कभी-कभी मन्त्र जप कर लेता था क्योंकि छोटी सी छोटी सेवा करना चाहता था झाड़ू, पोंछे, बर्तन, जूते उठाना। जो कोई न करे प्रभु जी मुझे दे दें। यही इच्छा थी। आज भी यही भाव प्रभु जी ने रखे हैं वैसे के वैसे। सेवा को मैं सर्वोपरि मानता था। क्योंकि उनके चरणों की सेवा मिल जाये यही भाग्य है।

मैं अकेले ही रिश्ता लेकर लड़के वाले के घर चला जाता था। यह तो अभी अकेले मैं बैठकर सोचता हूँ कि यह सब तो उनके प्रकाश से ही सब कुछ हो रहा था जिसे मैंने 'मैं' की संज्ञा दे दी थी।

फिर प्रभु जी ने कृपा कर दी १८ फरवरी १९९९ को दीदी की शादी हो गई और एक चिन्ता की समाप्ति। ऐसा तब महसूस होता था। प्रभु जी हर समय मेरे साथ हैं। पर यह सोचता था कि प्रभु जी ने शरीर त्याग दिया है। यह कैसे सम्भव था क्योंकि तब यह जानता ही नहीं था सिद्ध क्या होते हैं ? फिर समय बीतता गया नौकरी के लिये घूमता रहा अब यही प्रार्थना करता था कि प्रभु जी नौकरी भी घर के पास ही लगवा दें ताकि सुबह शाम मन्दिर जा सकूँ। क्या ज्ञान था कि कौन सी नौकरी प्रभु जी ने मेरे लिये चुनी थी।

वह शुभ दिन ५ सितम्बर १९९९ जन्माष्टमी के पर्व की रात के दो बजे। सेवा करवा के कीर्तन में उन्होंने बैठाया क्योंकि आज से पहले उन्होंने कीर्तन में बैठने का मौका ही नहीं दिया। सेवा भी

जल्दी समाप्त कर दी। यह सब उनकी लीला थी। बस मेरे बैठने की देर थी तभी उन सर्वशक्तिमान ने शक्तिपात कर के अपनी शरण में लेने का द्वार खोला और मुँह से यही शब्द गूँजे ''ॐ नमः शिवायः'' बाबा मुझे अपने चरणों में ले लो। सिर्फ अपने चरणों में। यह शब्द किसने बुलवाये क्यों यह तो वही जानें लेकिन उन्होंने मुझे लक्ष्य दे दिया ''चरण''. क्योंकि मुझे ज्ञान नहीं था कि चरण क्या होते हैं यह तो उन्होंने ज्ञान करवाया है थोड़ा बहुत कि चरण ही तो वह समुद्र है जिसे हर कोई पाना चाहता है। लेकिन पाना तो दूर सोचना भी अपने आप से मज़ाक करना होगा।

फिर धीरे-धीरे उन्होंने मेरा सफ़र शुरू कर दिया। २३ नवम्बर १९९९ को मेरे को आज्ञा हो गई यहीं पर रहने की। मेरे में तो कोई सामर्थ्य नहीं कि उनकी आज्ञा का पालन कर सकूँ। आज्ञा भी वही देते हैं और करवाते भी वही हैं मैं तो सिर्फ निमित्त मात्र हूँ। क्योंकि मंजिल भी वही है मार्ग दर्शक भी वही। शुरू-शुरू में ऐसा लगता था कि आज्ञा उन्होंने दी है तो पालन मुझे करना होगा। क्योंकि उन की आज्ञा ही मेरे लिये, मेरा सब कुछ था। पर अब उन्होंने यह ज्ञान देकर कि सर्वस्व ही आप हो। मुझे इसमें से हटा दिया जो मेरा सौभाग्य है।

मुझे खाने का बड़ा शौक था जिव्हा स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ माँगती थी Jeans, Jacket पहनने का बड़ा शौक था सुन्दर से सुन्दर। कभी ठण्डे पानी से नहाया नहीं।

लेकिन आज उन्होंने अपनी अपार कृपा से अन्न छुड़वा दिया निर्वस्त्र कर दिया ठंडा पानी बर्फ के समान ५.६ बार नहलाते हैं। उन की इस अपार कृपा के लिये जितना भी प्रणाम किया जाये कम है।

मेरी माँ पहली सहायक रहीं इस साधना में क्योंकि जब भी वह मिलीं तो उन्होंने एक ही शब्द कहा ''साधना करो प्रभु जी पर मुझे तुम से ज्यादा भरोसा है। जो वे करेंगे अच्छा ही करेंगे।'' चाहे वह कितने भी कष्ट में रहीं फिर भी उन्होंने अपने माथे पर सिलवट नहीं आने दी। साधना तो उनकी है।

दूसरा सहयोग स्वामी जी का रहा उन्होंने वह प्रेम दिया जो उन्हें प्रभु जी ने दिया था और एक सहयोग उस दिव्य विभूति का है। जिसको प्रभु जी अभी तराश रहे हैं नाम नहीं लूँगा अभी समय आने पर प्रभु जी खुद ही उजागर कर देंगे। इसलिये इस रचना के लिये अथाह समर्पण वाले स्वामी जी को प्रभुजी ने चुना क्योंकि प्रभु जी कहते हैं बाकि तो सब माया के चक्कर के घेरे में घिरे हैं।

''बाबा कहते हैं समय आने पर यहाँ पर सैकड़ों और हजारों वर्षों से तपस्या में बैठे हुये जंगलों से भी इस स्थान पर आयेंगे किस लीला से बुलायेंगे वही जानें।

महाप्रभु जी कहते हैं कि मेरे सभी आश्रमों का नियन्त्रण श्री सदाशिव बाबा अपने हाथ में ले लेंगे। क्योंकि बाबा ने मेरे द्वारा जिस उद्देश्य से इन की स्थापना करवाई थी वहाँ पर नियन्त्रण करने वाले उद्देश्य से भटक कर सभी अपने मान सम्मान और अपने-अपने गुट बनाकर व्यापार की दिशा दे दी गई है। अब वह समय बहुत ही जल्द आने वाला है कि बाबा ''कांगड़ा'' से किसी बच्चे को निमित्त बनाकर सवांई भेजेंगे और सारी व्यवस्था को ठीक ढंग से दिशा दी जायेगी। लेकिन केन्द्र बिन्दु सवांई धाम होगा। वह कौन होगा। जिसे निमित्त बनायेंगे, कब होगा, कैसे होगा ये तो रचनाकार ही जान सकते हैं। क्योंकि जिसने समुद्र बनाया है। वही उसकी गहराई बता सकता है। सही ढंग से। बाकि तो सब अनुमान ही लगा सकते हैं।

यह सब सौदा भाव का है। कोई यहाँ पर धन, औलाद, नौकरी के लिए आता है वह तो उसे वह दे ही देते हैं। लेकिन मैं यही कहूँगा कि यहाँ पर आओ निष्काम भाव से क्योंकि जो पुण्य कमा लोगे वह साथ जायेगा बाकी और सब यहीं रह जायेगा।

प्रभु जी कहते हैं- मैं बहाने से ही यहाँ पर बुलाता हूँ और भगाता हूँ। वैसे तो जीव की हर हरकत में बहाना है कोई यहाँ रोग से, कुछ रचना को देखने के लिए, कुछ यहाँ पर क्या हो रहा है उस के लिए आते हैं। भिक्षा भी एक बहाना है आप सब के आने का। भगाने का। धोती डालना, बाबा बन जाते हैं मन्दिर में, पागल हो जाते हैं कई व्यक्तियों को इस बहाने से रोक दिया क्योंकि प्रबल संस्कारी ही यहाँ पर पहुँच सकता है बाकि Programe बनाते ही रह जायेंगे। जैसे रोटी एक बहाना है पेट की भूख शांत करने का। फूल प्रभू को अर्पित करना बहाना है रिझाने का। सब कुछ बहाना ही तो है।

''मुझे झा जी के शब्द याद आ रहे हैं, क्या जाने तुम क्या करते हो किसका मन किस के द्वारा तुम किस विधि से हरते हो।'' यदि मनुष्य गहराई में जाए तो बहुत महत्व है इनका।

प्रभु जी कहते हैं ''मंजिल तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ हैं हर सीढ़ी का सफर तय मैं करवाऊँगा लेकिन कदम अपने पुरुषार्थ से तुम्हें ही उठाने पड़ेंगे।'' धैर्य, दृढ़ संकल्प साधना की नींव है।

प्रभु जी कहते हैं कि भक्त एक कदम चलता है तो प्रभू जी स्वयं हजार कदम आगे बढ़ाते हैं उससे मिलने के लिए।

यह पहला कदम ही पुरुषार्थ है परन्तु जीव को जब वह उस अवस्था तक पहुँचा देते हैं जहाँ 'मैं' खत्म हो जाता है तो उसे ज्ञान होता है कि यह पहला कदम जिसे पुरुषार्थ की संज्ञा दी थी वह उसका कदम नहीं था वह भी उनके प्रभु द्वारा था क्योंकि सर्वस्व तो वही है।

बाबा जो रचना कर रहे हैं उस को देखकर शायद आप सभी यह समझेंगे बाबा की इस बच्चे पर बड़ी कृपा है पर यह कृपा हर किसी पर हो सकती है। सिर्फ समर्पण कर दो मन, वाणी, कर्म से। मैं को खत्म कर दो। कहना जितना आसान है करना उतना ही मुश्किल। क्योंकि जो बाबा ने लिखवाया है पढ़ भी लेंगे थोड़ी देर के लिए जोश भी आ जाएगा लेकिन जब अपने ऊपर उतारने की बारी आएगी तो यही निकलेगा ''बड़ी तकलीफ होती है प्रभु का नाम लेने में''।

इसलिए आप सभी मुझे न देखकर के उस प्रकाश को देखो जिस ने बैठाया है। आप भी उस प्रकाश की तरफ बढ़ने का प्रयत्न करो क्योंकि सत्य में वही सर्वस्व है बाकि और सब झूठ है।

प्रभु जी ने आदेश दे कर दीवार पर लिखवाया है कि सिर्फ प्रभु जी के चरणों में प्रणाम करो न कि किसी मनुष्य को। यह परम सत्य है या तो जीव उनकी कृपा से ब्रह्म के पद पर पहुँच जाए तब ठीक है लेकिन यह बहुत कठिन है क्योंकि आजकल मनुष्य खोखला हो कर भी भगवान को भूलकर भगवान समझने लग पड़ा है। मान सम्मान के चक्कर में। प्रभु जी कहते हैं जिसे अपनी मुक्ति की तरफ कदम बढ़ाना है उस साधक को तो चरण स्पर्श तो क्या, स्पर्श भी नहीं करवाना चाहिए। क्योंकि मनुष्य इन्द्रिय तृप्ति के लिए भगवान को तो भूल जाता है साथ में यह भी सोच लेता है एक जन्म और ले लेंगे क्या बात है अभी अपनी इच्छाएँ पूरी कर लें।

देखो समय के अनुसार वह कैसा परिवर्तन कर पाते हैं क्योंकि उन्होंने आज्ञा देकर लिखवाया है तो यह संकल्प पूर्ण तो होगा। क्योंकि अभी तो आज्ञाएँ दे रहे हैं सिर पर हाथ रख कर बाद में वह चांटा भी ऐसा मारेंगे जिस की आवाज भी सुनाई नहीं देगी।

क्योंकि सिद्धों की बातें झूठी नहीं होती। यह सब समय पर वह ज्ञान करवा देंगे।

बाबा ने दिसम्बर माह १९९९ से शिवलिंग पूजन की आज्ञाएँ देनी शुरू की थीं। शायद ही कोई शिवलिंग हो जहाँ दूध से स्नान दिया जाता हो। यहाँ पर उन्होंने अपार कृपा करके १४३ लोगों को पूजन की आज्ञा दी सामग्री के साथ। लेकिन वह उस कृपा को समझ नहीं पाए। मुश्किल से २५, ३० व्यक्ति ही कर पाये शेष कुछ भ्रमित हो गये। कुछ को आज्ञायें देकर भी बहाने से रोक लिया। अब आदेश भी बंद हो गए पूजन के सामग्री के साथ। अब तो सिर्फ दूध का आदेश है वो भी कितने समय तक किस-किस के भाग्य में है वही जानें। क्योंकि यह बुद्धि के बाहर का विषय है।

यह रचना कितने समय तक है कितने समय तक पुण्य कमाओगे आप सभी यह भी वही जानें। क्योंकि मेरा तो क्या पता कल यहाँ पर हूँ या नहीं रहूँ। इसलिए समर्पण कर दो उनके चरणों में अपने आप को यही सत्य है।

मेरे को जो उन्होंने लक्ष्य दिया है चरणों का जब तक वह मुझे उस मंजिल तक नहीं पहुँचायेंगे मैं आप सभी से पीछे खड़ा हूँ।

कुछ लोगों का इशारा मेरे घर की तरफ होगा कि इतनी उच्च स्थिति है इस की तो पिता जी को ठीक क्यों नहीं कर देता। देखा नहीं मैंने आज तक कब कहा है कि मेरी उच्च स्थिति है ? मैंने तो पहले ही कह दिया कि मैं तो आप सभी के पीछे लाईन में खड़ा हूँ चुपचाप। आप सभी बातें करने वाले मुझ से कई गुणा आगे हैं। इतना बता देता हूँ न ही मैंने बाबा को कहा है आज तक कि पिताजी को ठीक कर दो। क्योंकि मैं सत्य को जान चुका हूँ क्योंकि संस्कारों का भुगतान हर व्यक्ति को करना पड़ता है। मुझे यह भी ज्ञान है कि यह जो भुगतान करवा रहे हैं सूक्ष्म है। यह तो मैं बेटे की हैसियत से सोच सकता हूँ कि पिता जी को ठीक होना चाहिए। लेकिन जो सब के पिता हैं क्या मैं उससे भी अच्छा सोच सकता हूँ जो पल-पल मेरे साथ है, क्या मेरे घर वालों को नहीं देख रहे होंगे। जो वह कर रहे हैं ठीक है सिरमाथे है।

क्योंकि आज तो मैं सिर्फ एक बेटा हूँ उस माँ का। समय आने पर हजारों बेटे उस माँ के हो जायेंगे। लोक क्या परलोक में भी उस का सम्मान होगा। बस आँखों को खोल कर देखते जाईये बाबा क्या करते हैं। यहाँ पर जो हो रहा है, होगा। वह न ही किसी ने सुना होगा न ही देखा होगा।

यह सब बातें जो शुरू से आखिर तक लिखी गई हैं बाबा, महाप्रभु जी, प्रभु जी की प्रेरणा से है मैं तो सिर्फ माध्यम हूँ।

एक बात है श्री प्रभुजी ने मुझ में रखी है, वह है गुस्सा (क्रोध)। यह क्यों रखा है, क्या लीला है वही जानें। क्योंकि जो प्रभुजी की आज्ञाओं का पालन नहीं करता तथा मेरे सामने असत्य कहता, अपनी चतुर बुद्धि से अपने आपको बुद्धिमान समझता, श्री प्रभुजी के प्रति प्रेम का दिखावा करता है उस के ऊपर बहुत गुस्सा (क्रोध) आता है।

मेरी (इस देह में) तीव्र अभिलाषा रही है कि बाबा ऐसी रचना करें कि सिद्धयोग का ध्वज ऐसा लहराये कि सारी दुनियाँ ही बदल जाये। केवल एक ही नाम हो ''सिद्धयोग''।

बाबा आप सभी को अपने लक्ष्य में सफल बनायें यही मेरी प्रार्थना है। जय गुरुदेव !

श्री सदाशिव बाबा की चरण रज-अमितपुरी

※ ※ ※

दुःख-निवृत्ति का क्या उपाय है ?

महात्मा श्री भगवत्स्वरूपजी

'संसार में दुःख है' यह सबका सामान्य अनुभव है। योगदर्शन के प्रणेता महर्षि पतञ्जलि कहते हैं-जो दुःख अभी तक आया नहीं है और भविष्य में आने वाला है वह दूर किया जा सकता है। अतः उसे दूर कर लेना चाहिये-

हेयं दुःखमनागतम्।

(योगसूत्र २/१६)

अगले सूत्र में महर्षि पतञ्जलि दुःख का कारण बताते हुए कहते हैं कि देखने वाला जो द्रष्टा चेतन है और दीखने वाला यह जड़ पदार्थ-समूह है, इन दोनों का संयोग हो जाना ही दुःख का कारण है। यदि यह संयोग न हो तो दुःख नहीं हो सकता-

द्रष्टृदृश्ययोः संयोगो हेयहेतुः।

(२/१७)

अब इस द्रष्टा और दृश्य के संयोग का भी कारण बताते हुए महर्षि पतञ्जलि कहते हैं कि इस संयोग का कारण है अविद्या अर्थात् अज्ञान।

तस्य हेतुरविद्या।

(२/२४)

उपर्युक्त तीनों सूत्रों में, दुःख विषयक सारी जानकारी आ गई फिर भी अन्तिम प्रश्न तो बाकी रह गया कि अविद्या कैसे दूर हो ?

शास्त्र कहते हैं कि यह अविद्या कब और कैसे पैदा हुई इसकी खोज में मत भटक जाना, क्योंकि आप इस बात का पता ही नहीं लगा सकोगे कि यह अविद्या कब और कैसे पैदा हुई। इसीलिये भगवान् श्री कृष्ण ने कहा है-हे अर्जुन ! ये प्रकृति और पुरुष दोनों ही अनादि हैं। इनको अनादि जानो-

प्रकृतिं पुरुषं चैव
विद्धयनादी उभावपि।

(गीता १३/१९)

श्वेताश्वतरोपनिषद् में कहा गया है कि माया को ही प्रकृति समझना चाहिये तथा मायावी को महेश्वर समझना चाहिए-

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं
तु महेश्वरम्।
तस्यावयवभूतैस्तु व्याप्तं
सर्वमिदं जगत्।।

(४/१०)

आचार्य शंकर भगवत्पाद ने विवेक-चूडामणि के श्लोक ११० में कहा है कि 'जो अव्यक्त नाम वाली त्रिगुणात्मिका अनादि अविद्या परमेश्वर की पराशक्ति है, वही माया है जिससे यह सारा जगत् उत्पन्न हुआ है।

ऊपर कहा जा चुका है कि माया-अविद्या कब और कैसे पैदा हुई, इस बात की खोज में भटकना नहीं चाहिए, बल्कि इसे दूर करने का प्रयत्न करना चाहिये। इस विषय में भगवान् बुद्ध अपने भक्तों को एक कहानी सुनाया करते थे, जो इस प्रकार है-

'एक आदमी के हाथ में जहर में बुझाया हुआ एक विषैला तीर लग गया। उसके पास में बैठे हुए मित्रों ने उस तीर को हाथ से बाहर निकालना शुरू किया तो उस आदमी ने उनको

ऐसा करने से मना करते हुए कहा कि तीर बाहर निकालने से पहले तुम लोग इस बात का पता लगाओ कि यह तीर किस दिशा से आया है और मेरे किस दुश्मन ने यह तीर चलाया है। पास में बैठे उसके मित्र ने उसे समझाया कि पहले तीर बाहर निकालने दो, अन्यथा जहर सब शरीर में फैलने से तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी। वह नहीं माना और कुछ देर बाद तीर के जहर से मर गया।'

अब प्रश्न यह रह गया कि इस माया के पार कैसे जाया जाय, इसका क्या उपाय है ? सभी शास्त्रों का कहना है और प्रायः सभी सन्तों का अनुभव है कि भगवान् की इस माया को पार करना अत्यन्त कठिन है। उनके शरण में गए बिना इस माया से पार नहीं जा सकते और इस अविद्या-माया के पार गये बिना दुःखों से छुटकारा नहीं हो सकता। भगवान् कहते हैं-

दैवी ह्येषा गुणमयी
मम माया दुरत्यया।
मामेव ये प्रपद्यन्ते
मायामेतां तरन्ति ते।।

(गीता ७/१४)

'मेरी यह त्रिगुणात्मिका माया दैवी है, इसलिए दुरत्या है अर्थात् कठिनाई से पार की जा सकती है। परन्तु जो लोग मेरी शरण में आ जाते हैं वे मेरे भक्त इस माया के पार आसानी से चले जाते हैं।' दुःख-निवृत्ति का सर्वश्रेष्ठ उपाय यही है कि भगवान् की शरण में चला जाय।

भक्त कवि सूरदास जी ने कहा है-

अब मैं नाच्यौ बहुत गोपाल।
सूरदास की सबै अविद्या दूर करो नन्दलाल।।

अविद्या ग्रस्त अज्ञानी भी अन्धा ही है। इस तरह हमको भी अपनी अविद्या दूर करने के लिए सूरदास जी की तरह भगवान् से प्रार्थना करनी चाहिये।

भगवान् में दुःख नहीं है क्योंकि सारे दुःख कर्मजन्य है और भगवान् में कर्म नहीं है। वे कहते हैं कर्म मुझे नहीं बाँधते और न कर्मफल में मेरी आसक्ति है-

न मां कर्माणि लिम्पन्ति
न मे कर्मफले स्पृहा।

(४/१४)

इसी विषय को दूसरे प्रकार से समझने का प्रयास करें।

भगवान् कहते हैं-

अनित्यमसुखं लोकमिमं
प्राप्य भजस्व माम्।।

(गीता ९/३३)

हे अर्जुन ! तू इस विनाशी और दुःखमय जगत् को प्राप्त हुआ है, इसलिये मेरा भजन कर ताकि इसके बाहर निकल सके।

आप अभी कहाँ रह रहे हैं। मृत्युलोक में, जहाँ पर दुःख ही दुःख है। इसे छोड़कर अमृतलोक में चले जायें, जहाँ पर दुःख की गन्ध भी नहीं है।

वह कौन-सा लोक है जहाँ पर मृत्यु और दुःख नहीं है ?

वह आत्मा का, परमात्मा का, भगवान् का निजधाम है।

क्या कोई जीव वहाँ पर गया है और क्या हम भी जा सकते हैं ?

हाँ भगवान् का भजन करके बहुत से लोग वहाँ गये हैं और आप भी जा सकते हैं।

इसका क्या प्रमाण है ?

स्वयं भगवान् श्री कृष्ण ने इस सत्य का उद्घोष किया है-

'यद्गत्वा न निवर्तन्ते
तद्धाम परमं मम।।'

'जहाँ जाकर जीव दुःख भोगने के लिये वापस नहीं आता, वही मेरा परम धाम है।' इसलिये निरन्तर मेरे में ही मन लगा, मेरा ही भजन कर, मेरे लिये ही कर्म कर और मुझे ही नमस्कार कर। ऐसा करने पर तू मेरे में ही मिल जायेगा।

मन्मना भव मद्भक्तो
मद्याजी मां नमस्कुरु।
मामेवैष्यसि सत्यं ते
प्रतिजाने प्रियोऽसि मे।।

कहाँ तक कहें सारी गीता में भगवान् ने ऐसा ही आश्वासन दिया है। अब जो व्यक्ति साक्षात् भगवान् की बात भी मानने को तैयार नहीं वह मनुष्य की कही बात कैसे मानेगा ?

अब आपको दुःख निवृत्ति का उत्तम उपाय बतलाया जाता है। क्या आपको मालूम है कि भगवान् के साथ हमारे कितने प्रकार के सम्बन्ध हैं ? भगवान् के साथ हमारे बारह प्रकार के सम्बन्ध हैं, जो इस प्रकार हैं-

गतिर्भर्ता, प्रभुः साक्षी
निवासः शरणं सुहृत्।
प्रभवः प्रलयः स्थानं
निधानं बीजमव्ययम्।।
(गीता ९/१८)

'प्राप्त होने योग्य परम धाम, भरण-पोषण करने वाला, सबका स्वामी, शुभाशुभ का देखने वाला, सबका वासस्थान, शरण लेने योग्य, प्रत्युपकार न चाहकर हित करने वाला, सबकी उत्पत्ति-प्रलय हेतु, स्थिति का आधार, निधान और अविनाशी कारण भी मैं हूँ।'

भगवान् श्रीकृष्ण ही द्रष्टा (साक्षी) हैं। उनके सामने अपने को हर समय बनाये रखना और उनके श्री चरणों की विस्मृति न होना ही दुःखनिवृत्ति का सर्वोत्तम उपाय है-

अविस्मृतिः कृष्णपदारविन्दयोः
क्षिणोत्यभद्राणि शर्म तनोति च।
सत्वस्य शुद्धिं परमात्मभक्तिं
ज्ञानं च विज्ञानविरागयुक्तम्।।
(श्रीमद्भा० १२/१२/५४)

'भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमलों की अविचल स्मृति सारे पाप-ताप और अमंगलों को नष्ट कर देती है और परम शान्ति का विस्तार करती है। उसके द्वारा अन्तःकरण शुद्ध हो जाता है। भगवान की भक्ति प्राप्त होती है। एवं पर-वैराग्य से युक्त भगवान् के स्वरूप का ज्ञान तथा अनुभव प्राप्त हो जाता है'।

भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-कमलों में अविचल स्मृति बनी रहे इसका उपाय भी भागवतकार इस प्रकार बतलाते हैं-

यशःश्रियामेव परिश्रमः परो
वर्णाश्रमाचारतपः श्रुतादिषु।
अविस्मृति श्रीधरपादपद्मयो-
र्गुणानुवादश्रवणादिभिर्हरेः।।
(श्रीमद्भा० १२/१२/५३)

'वर्णाश्रम के अनुकूल आचरण, तपस्या और अध्ययन आदि के लिए जो बहुत बड़ा परिश्रम किया जाता है उसका फल है- केवल यश अथवा लक्ष्मी की प्राप्ति। परन्तु भगवान् के गुण, लीला, नाम आदि का श्रवण-कीर्तन आदि तो उनके श्री चरण-कमलों की अविचल स्मृति प्रदान करता है।'

※ ※ ※

ऐसे प्रभुजी हैं अलबेले !

भूपेन्द्र 'अंकुश'
पटना (पक्षीबिहार) जलेसर, एटा

ऐसे प्रभुजी हैं अलबेले
हरदम करते दूर झमेले
बाँधे चेले के सिर सेले अपने हाथ से।
जो हो दुनियाभर का मारा
डूबा जिनका भाग्य सितारा
खिदमत करके किस्मत लेले दीनानाथ से।

(१) ना मानो तो आ, आके प्रभुजी के लखो नजारे।
कदम-कदम पर खड़े मिलेंगे देने तुम्हें सहारे।।
आओ यहाँ श्री सिद्धगुफा.......
जहाँ पर हमने लगते देखे हँसी खुशी के मेले।
ऐसे प्रभुजी हैं अलबेले.......

(२) साध्य-असाध्य सभी रोगों की शीघ्र दवा बतलादें।
मुसकाकर पूरी करते हैं छोटी-बड़ी मुरादें।।
रज की अनौखी दन्त कथा......
उनको गले लगाते जिनको दुनियाँ देत धकेले।
ऐसे प्रभुजी हैं अलबेले......

(३) अपने जीवन की पुस्तक के पन्ने खोल दिखा दो
तुमने क्या-क्या लिखडाला है पढ़कर उसे सुना दो
गुरू के सम्मुख मत शरमा......
सद्‌गुरू तेरे साथ रहेंगे चलना नहीं अकेले।
ऐसे प्रभुजी हैं अलबेले......

जीवन में स्वरोदयकी महत्ता
(प्राणायाम)

लेखक–रामप्यारे अग्निहोत्री

स्वरोदय का प्रमुख अंग प्राणायाम है। प्राणायाम के सम्बन्ध में प्राचीन ग्रन्थों में विशेष साहित्य की उपलब्धि होती है। वास्तव में प्राणायाम मानव-जीवन का बड़ा ही उपयोगी विषय है। इससे लौकिक और पारलौकिक दोनों साधनों की उपलब्धि होती है। जिस प्रकार प्राणायाम योगाभ्यासियों के लिये आवश्यक है, उसी प्रकार गृहस्थों के लिये भी उपयोगी है। प्राणायाम ब्रह्म-प्राप्ति का श्रेष्ठ किंतु सुलभ साधन है। इससे जीवन की उलझी हुई गुत्थियाँ सहज ही सुलझ जाती हैं। आत्मोन्नति का श्रेष्ठ साधन प्राणायाम ही है। प्राणायाम का आश्रय लेकर योगाभ्यासी इच्छानुसार देहोत्सर्ग करके जाता है। समाधिस्थ होकर ब्रह्ममय हो जाता है। ब्रह्म-नाड़ी का स्फुरण प्राणायाम से ही होता है।

योग-शक्ति से योगी मृत्यु का समय निकट जानकर प्राणायाम में तत्पर हो जाता है और सहज ही मृत्यु के क्षण टल जाते हैं। हृदय में स्थित प्राणवायु जठराग्नि को उद्दीप्त करने वाली है। ज्ञान-विज्ञान और उत्साह-सभी की प्रवृत्ति वायु से ही होती है। शरीर के लिये ही नहीं, प्रत्युत आध्यात्मिक शक्ति के विकास के लिये प्राणायाम श्रेष्ठ साधन है। आन्तरिक शरीर के अवयवों की पुष्टि प्राणायाम से होती है। ज्ञान-तन्तु, मस्तिष्क इत्यादि शारीरिक दुर्बलता होने पर भी प्राणवायु की कमी के कारण क्षीण हो जाते हैं।

प्राणायाम के अभ्यास के पूर्व योग के षट्कर्मों की सिद्धि आवश्यक मानी गयी है। पर आज के युग में इन कर्मों का प्रायः सर्वथा लोप हो गया है और शायद ही कुछ योगियों एवं अभ्यासियों को इन कर्मों का ज्ञान हो। ये षट्कर्म इस प्रकार हैं–(१) नेति, (२) धौति, (३) नौलि, (४) वस्ति, (५) कपालभाति और (६) त्राटक। इन षट् कर्मों के अलग-अलग विधान हैं, जिनसे शारीरिक शुद्धि होती है; पर बिना ज्ञान और अभ्यास के ये षट्कर्म सर्वथा असम्भव हैं। इन कर्मों के द्वारा जब शरीर मल-श्लेष्मा आदि से शुद्ध हो जाता है, तब प्राणायाम का अभ्यास अधिक उपयोगी सिद्ध होता है; पर इन षट्कर्मों के बिना भी प्राणायाम सर्वथा सम्भव है; अभ्यास में विलम्ब अवश्य होता है।

गीता में भगवान् ने कहा है–

'भ्रुवोर्मध्ये प्राणमावेश्य सम्यक्
स तं परं पुरुषमुपैति दिव्यम्।।'

(अध्याय ८/१० का उत्तरार्द्ध)

'जो अच्छी तरह मन द्वारा दोनों भौंहों के बीच प्राणवायु की रक्षा कर सकता है, वही उस परम ज्योति से सम्पन्न पुरुष को प्राप्त करने में सफल है।' प्राणायाम के समय प्राणवायु को भौंहों के मध्य में स्थापित कर साधक को अपनी दृष्टि उसी पर केन्द्रित करना चाहिये। तभी मन शान्त होता है और परम पुरुष की प्राप्ति होती

है। शिवसंहिता में कहा गया है कि 'प्राणायाम की साधना के समय साधक के शरीर में पहले स्वेद-प्रस्रव होता है और कुछ दिन लगातार अभ्यास करते रहने से शरीर में कम्पन होने लगता है और तब आगे चलकर मेढ़क के चाल की गति उत्पन्न हो जाती है। अधिक काल तक अभ्यास करने से वायु सिद्ध हो जाती है। और इच्छानुसार त्वरित गमन भी सम्भव हो सकता है; साथ ही अल्प निद्रा, अल्प मल-मूत्रादि, आरोग्यता आदि का उद्भव होता है योगसिद्धि के लिये प्राणायाम उत्तम साधन है। योगसिद्ध महात्मा अष्टसिद्धियों को सहज में ही प्राप्त कर लेता है।

प्राणवायु के सिद्ध हो जाने पर बाह्य सिद्धियाँ भी अनायास ही प्राप्त हो जाती हैं। सूक्ष्म वस्तु-दर्शन के अतिरिक्त दूर-दृष्टि, दूर-दर्शन, दूर-श्रवण, परकाय-प्रवेश, पदार्थों का अदृश्य करना, स्वयं अदृश्य हो जाना आदि-आदि की उपलब्धि हो जाती है। काकचञ्चु द्वारा वायु पान करने से भी यही शक्ति प्राप्त हो जाती है। वायु सिद्ध हो जाने पर आज्ञा चक्र का जागरण होता है, उस समय अभ्यासार्थी को अकुलाहट सी प्रतीत होती है, शरीर में चींटी रेंगने जैसी गति होती है, कभी किसी के झपटने का आभास होता है और कभी आँखों के सामने विभिन्न प्रकार के प्रकाश का अभ्यास होता है। यह सब योग- सिद्धि की बाधाएँ हैं। इनसे साधक को विचलित न होना चाहिये।

प्राणायाम के माध्यम से जब आज्ञाचक्र का जागरण हो जाता है, उस समय मस्तिष्क में विचारों की प्रेरणा का प्रभाव अन्य व्यक्ति के मस्तिष्क पर भी पड़ने लगता है और इस तरह विचार-प्रेरणा (टेलीपैथी) की शक्ति जाग्रत हो उठती है। प्राण-वायु की साधना जीवन के लिये अत्यन्त उपयोगी है। प्राणायाम का अभ्यास परिपुष्ट हो जाने से शरीर में पसीना आने लगता है। इस पसीने को यथास्थान मालिश करने पर शरीर की जड़ता और स्थूलता नष्ट हो जाती है, साथ ही श्लेष्मा आदि का भी शमन होता है।

प्राणायाम के लिये पद्मासन ही सबसे उपयुक्त आसन है। प्राणायाम का अभ्यास प्रारम्भ करने के पहले मूलबन्ध, उड्डियानबन्ध और जालन्धर बन्धों का जानना अत्यावश्यक है इन बन्धों के माध्यम से प्राणायाम का अभ्यास परिपुष्ट होता है।

१. **मूलबन्ध**–मल-मूत्रेन्द्रिय के मध्य में जो चार अंगुल का स्थान होता है, उसे बायें पाँव की एड़ी से दबाकर गुदा को आकुञ्चित करना ही मूलबन्ध है।

२. **उड्डियानबन्ध**–रेचक की अवस्था में पेट को अंदर की ओर श्वास के बल से खींचकर पीठ के आन्तरिक भाग से सटाने की प्रक्रिया को उड्डियानबन्ध कहा जाता है।

३. **जालन्धरबन्ध**–कुम्भक की अवस्था में कण्ठ भाग को संकुचित कर कण्ठ के मूल भाग में ठोढ़ी के लगाने की विधि को जालन्धर बन्ध कहते हैं।

प्राणायाम के तीन भाग हैं– पूरक, कुम्भक और रेचक। पूरक में जितना समय लगता है, उसका चौगुना कुम्भक में और दुगुना समय रेचक में लगाना चाहिये। पूरक के समय मूलबन्ध, कुम्भक में जालन्धरबन्ध और रेचक में उड्डियानबन्ध का प्रयोग होता है।

बायाँ नासिका-छिद्र से श्वांस खींचने की प्रगति को पूरक; उसे हृदय में स्थित करने की अवस्था को कुम्भक और दायें नासिकाछिद्र से उसे बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। बायें नासिका-छिद्र के श्वांस खींचने से दायें नासिका के द्वारा छिद्र से निकालने तक की अवस्था प्राणायाम की प्रथम आवृत्ति कही जाती है। इसकी दूसरी आवृत्ति दायें नासिका-छिद्र से श्वांस खींचकर हृदय में स्थित करने के बाद बायें नासिका-छिद्र से श्वांस निकालने की प्रक्रिया को प्राणायाम की दूसरी आवृत्ति कहा जाता है।

प्राणायाम के आठ भेदों में अनुलोम-विलोम प्राणायाम और सूर्यभेदन प्राणायाम ही सुलभ होते हैं। अनुलोम-विलोम प्राणायाम में दाहिने नासाग्र-छिद्र को दबाकर बायें नासाग्र-छिद्र से थोड़ी-थोड़ी वायु को बाहर निकाला जाता है और उसके बाद दाहिने नासाग्र-छिद्र से क्रमश: वायु ग्रहण कर दोनों नासाग्र छिद्रों को बंद कर लिया जाता है; यही कुम्भक की अवस्था होती है। कुम्भक की अवस्था पूर्ण हो जाने पर बायें नासाग्र-छिद्र से वही अंदर स्थित वायु धीरे-धीरे बाहर निकाली जाती है; यही प्राणायाम की रेचक अवस्था होती है। साधारणत: प्राणायाम की यही सरल साधना है। सूर्यभेदन प्राणायाम में बायें नासिका छिद्र को दाहिने हाथ की अनामिका और कनिष्ठिका से दबाकर दाहिने नासिका छिद्र के द्वारा जोर से वायु को ग्रहण किया जाता है और तब उसे हृदयस्थितकर दोनों नासिका-छिद्र और मुँह बंद कर लिए जाते हैं। कुम्भक की अवस्था पूरी हो जाने पर वही वायु बायें नासिका छिद्र से धीरे-धीरे बाहर निकाल दी जाती है।

प्राणायाम के भेदों में बहुत ही सूक्ष्म अन्तर होता है। प्राय: इनकी एक ही प्रणाली होती है। उपर्युक्त प्रकार के प्राणायाम आठ दिनों तक प्रात:, दोपहर और संध्या के समय तीन-तीन बार करने से शरीर में स्वेद-प्रसव होने लगता है। जाड़े के दिनों में स्वेद-प्रसव कदाचित् ही होता है। प्राणायाम के समय मन स्वत: स्थिर हो जाता है। प्रारम्भ में मन एकाग्र करने में कठिनता अवश्य होती है; पर दोनों भौंहों के बीच दृष्टि स्थिर करने से मन की चंचलता दूर हो जाती है। समाधि अवस्था के लिये एकान्त-मध्यरात्रि का समय उत्तम होता है।

सिद्धान्तत: प्राणायाम के दो भेद-'अगर्भ' और 'सगर्भ' होते हैं। जप और बिना ध्यान के जो प्राणायाम किया जाता है, उसे **अगर्भ प्राणायाम** कहा जाता है। जप और ध्यान के साथ किया जाने वाला प्राणायाम **सगर्भ प्राणायाम** होता है। सगर्भ प्राणायाम फलप्रद और जीवन के लिये सार्थक होता है। योगाभ्यासी इसी प्राणायाम का आश्रय लेते हैं। अगर्भ प्राणायाम नियम-पालन के लिये किंतु फलरहित होता है। अगर्भ प्राणायाम से चित्त में स्थिरता नहीं आती और योगाभ्यास भी परिपक्व नहीं होता। जप में इष्ट देव का नाम ही स्मरण किया जाता है अथवा गायत्री मन्त्र की आवृत्ति अंदर ही अंदर की जाती है। साधारणतया दो अक्षरों (राम या शिव) का नाम पूरक की अवस्था में सोलह बार जपा जाता है। कुम्भक की अवस्था में अड़तालीस से लेकर चौंसठ बार जपा जाना चाहिये। इससे अधिक भी नाम-जप साध्य है। रेचक की अवस्था में पूरक से दूना जप किया जाना चाहिये। जप के साथ इष्टदेव

का ध्यान भी आवश्यक है। ध्यान की अवस्था नासिकाग्र या दोनों भौंहों के बीच स्थिर दृष्टि अथवा आँख बंद करने की अवस्था में अन्तर्दृष्टि से है। इससे चित्त एकाग्र होता है और इष्ट देव पर ध्यान जमता है। यह अभ्यास जब कुछ दिनों में परिपक्वावस्था को प्राप्त हो जाता है, तब ध्यान में इष्टदेव का दर्शन भी होने लगता है।

अवस्था के अनुसार भी प्राणायाम के चार भेद होते हैं-(१) **कनिष्ठ प्राणायाम**-साधारण अभ्यास के आगे पाँच मिनट से अधिक वायुस्तम्भन की दशा को कहते हैं। (२) **मध्यम प्राणायाम**-कनिष्ठ प्राणायाम अधिक सुदृढ़ होने पर दस मिनट से अधिक वायु-स्तम्भ की दशा को कहते हैं। (३) **उत्तम प्राणायाम**-मध्यम प्राणायाम की अग्रिम कोटि ही उत्तम प्राणायाम है। इसमें ध्यान सुदृढ़ होता है और वायु-स्तम्भन की अवधि पंद्रह मिनट तक हो जाती है। (४) **उत्तमोत्तम प्राणायाम**-इसमें प्राणवायु का स्तम्भ अत्यन्त सुदृढ़ हो जाता है। शरीर में स्वेद और कम्पन का वेग आने लगता है। आनन्दातिरेक में रोमांच, अश्रुपात और विभ्रम की अवस्थाएँ उद्भूत होने लगती हैं। प्राणायाम की इस अवस्था में अभ्यासी ऊपर उठने लगता है और शरीर में हलकापन आ जाता है।

प्रत्येक प्रकार के प्राणायाम में प्रथम, द्वितीय, तृतीय और चतुर्थ उद्घातों का संचरण होता है। नाभिदेश से वायु प्रेरित होकर ब्रह्माण्ड में जब टक्कर खाती है, तब एक उद्घात होता है। एक उद्घात में कनिष्ठ प्राणायाम का समय लगता है। उत्तमोत्तम प्राणायाम में उद्घात की संख्या चार अवश्य निरूपित की गयी है; किंतु इसमें चार से अधिक भी उद्घात होते रहते हैं। आगे चलकर प्राणायाम के द्वारा ही प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि की अवस्थाएँ परिपुष्ट होती हैं।

प्राणायाम के माध्यम से प्राणवायु पर विजय प्राप्त की जा सकती है, जिससे मल-मूत्र और कफ की मात्रा में कमी आ जाती है। अधिक भोजन पचा डालने की शक्ति प्राप्त हो जाती है। श्वास का प्रवाह विलम्बित हो जाता है। द्रुतगमन की शक्ति आ जाती है। यहाँ तक अभ्यासी अलौकिक ब्रह्मशक्ति से सम्पन्न हो जाता है। इस तरह प्राणायाम जीवन का महान् उपयोगी विषय है, जिसकी साधना स्वरोदय के माध्यम से ही सम्भव है। ❋ ❋ ❋

मन, वाणी तथा देह को नियन्त्रित करने वाला महान् पथ प्रदर्शक सर्वशक्तिमान अन्तस्थ आत्मा ही है। उस आत्मा के समक्ष समर्पण कर उसका साक्षात् रूप बन जाना ही साधक का लक्ष्य है।

परम तत्त्वोपदेष्टा गुरु और जिज्ञासु शिष्य

(डॉ० श्रीमहाप्रभुलालजी गोस्वामी)

भारतीय परम्परा में गुरु, आचार्य, उपाध्याय आदि शब्दों का पारिभाषिक अर्थों में प्रयोग मिलता है। पर 'गुरु' शब्द सर्वत्र विशेष व्याप्त है। प्राचीन साहित्य की आलोचना करने से यह सुस्पष्ट है कि तान्त्रिक-प्रधान धर्मसम्प्रदायों के मध्य में तथा अध्यात्मसाधना के क्षेत्रों में गुरु की अपरिहार्यता है। अध्यात्म एवं साधना का वैशिष्ट्य आरम्भ से ही गौरवमयी मूर्ति के रूप में स्वीकृत है। दीक्षा के बिना किसी भी क्रिया में अधिकार न होने के कारण कुलार्णवतन्त्र आदि के अनुसार गुरु की विभिन्न व्याख्याओं के साथ महत्व वर्णित है–

'तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरुणा दीक्षितो भवेत्।'

(कु० त० १४)

मोक्ष की प्राप्ति ही सम्प्रदाय का परम लक्ष्य है और इसकी प्राप्ति गुरु से दीक्षित हुए बिना सम्भव नहीं है, अतः अनायास ही गुरु का महत्व सिद्ध होता है–

बिना दीक्षां न मोक्षः स्यात् तदुक्तं शिवशासने।
सा च न स्याद्विनाऽऽचार्यमित्याचार्यपरम्परा।।

मुण्डकोपनिषद् में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्मज्ञ गुरु संयत-इन्द्रियसम्पन्न प्रशान्त-चित्त समीप में आये हुए शिष्य को तत्व के अनुरूप उस ब्रह्मविद्या का उपदेश दे, जिसके द्वारा शिष्य अक्षर पुरुष के स्वरूप को भलीभाँति अवगत करे। इनसे सुस्पष्ट है कि सिद्ध गुरुमुख से ही विद्या का लाभ करना चाहिये।

रुद्रयामल (उ० ४/२) के अनुसार गुरु का स्वरूप वर्णन करते हुए कहा गया है कि शान्त, जितेन्द्रिय, कुलीन, शुद्ध वेश धारण करने वाला, पवित्र आचार-सम्पन्न, सुप्रतिष्ठित, शुद्ध, दक्ष, सुबुद्धि, आश्रमी, ध्याननिष्ठ, मन्त्रार्थ का ज्ञान कराने वाला निग्रह और अनुग्रह करने में समर्थ, तन्त्र-मन्त्र-विशारद, रोगहीन, अहंकाररहित, निर्विकार, महापण्डित, वाक्पति, श्रीसम्पन्न, सदा यज्ञ का विधान करने वाला, पुरश्चरण का सम्पादक, सिद्ध-हित और अहित-विवर्जित, सभी सुन्दर लक्षणों से समन्वित, विशिष्ट व्यक्तियों के द्वारा समादृत, प्राणायामादि-सिद्ध, ज्ञानी, मौनी, वैराग्यसम्पन्न, तपस्वी, सत्यवादी, सदा ध्यानपरायण, आगम के अर्थों का विशेषज्ञ, अपने धर्म के आचरण में तत्पर, अव्यक्त लिंग चिन्हयुक्त, भावुक, कल्याणकर, दानपरायण, लक्ष्मीवान्, धैर्यसम्पन्न एवं प्रभुतासम्पन्न गुरु होना चाहिये।

सम्मोहनतन्त्र, कुलार्णवतन्त्र, तन्त्रराजतन्त्र आदि में अतिशय विस्तार के साथ गुरु का स्वरूप वर्णित है। यह सत्य है कि शास्त्रोक्त लक्षण सम्पन्न गुरु सर्वथा दुर्लभ हैं, किंतु गुरुतन्त्र के अनुसार गुरु के विषय में ऐसा वर्णन किया गया है कि शिष्य के वित्त (धन) का अपहरण करने वाले गुरु अनेक हैं, परंतु शिष्य के हृदय के संताप को दूर करने वाले गुरु दुर्लभ हैं। इन गुरुओं में शिष्यों को

अभ्युदय-योग और निःश्रेयस्-मोक्ष प्रदान करने वाले गुरु श्रेष्ठ हैं।

गुरु और शिष्य की परस्पर परीक्षा

गुरु और शिष्य की परीक्षा दीक्षार्थी शिष्य और शिक्षा देने वाले गुरु के प्रसंग में कही गयी है। अयोग्य शिष्य को मन्त्र देने पर देवता के अभिशाप की सम्भावना रहती है। जिस प्रकार मन्त्री के द्वारा किये गये पाप का भोग राजा को करना पड़ता है तथा पत्नी के द्वारा किये गये पाप का भोग पति को भी करना पड़ता है, वैसे ही शिष्य के पाप का भागी गुरु होता है, इसमें संदेह नहीं है-

मन्त्रिदोषश्च राजानं जायादोषः पतिं यथा।
तथा प्राप्नोत्यसंदेहं शिष्यपापं गुरुं प्रिये।।

(उ० त० ११)

यदि स्नेह या लोभ के कारण अयोग्य शिष्य को दीक्षा दी जाती है तो गुरु और शिष्य दोनों को ही देवता का अभिशाप लगता है-

स्नेहाद्वा लोभतो वापि योऽनुगृह्णाति दीक्षया।
तस्मिन् गुरौ च शिष्ये तु देवता शापमापतेत्।।

(प्र० सा० त० ३६५०)

इसलिये शिष्य बनाने के पहले उसकी परीक्षा अवश्य करनी चाहिये। सारसंग्रह के अनुसार एक वर्ष शिष्य की परीक्षा का समय निर्धारित किया गया है। वर्ण के अनुसार परीक्षा-काल का भेद भी शारदातिलक में वर्णित है, यथा-ब्राह्मण का एक वर्ष, क्षत्रिय का दो वर्ष, वैश्य का तीन वर्ष और शूद्र का चार वर्ष कहा गया है। शारदातिलक (२/१४५, २५०) में कहा गया है कि सत्-शिष्य को कुलीन, शुद्धात्मा, पुरुषार्थपरायण, वेदाध्ययनसम्पन्न, काममुक्त, प्राणियों का हितचिन्तक, अपने धर्म में निरत, भक्ति पूर्वक पिता-माता का हितकारी, शरीर, मन, वाणी और धन के द्वारा गुरु की सेवा में रत, गुरु के सम्पर्क में जाति, विद्या और धन के अभिमान से शून्य, गुरु की आज्ञा का पालन करने-हेतु प्राणविसर्जन के लिये उद्यत, अपना काम छोड़कर भी गुरु के कार्य के लिये तत्पर, गुरु के प्रति भक्ति परायण, आज्ञाकारी और शुभाकांक्षी होना चाहिये।

'तन्त्रराज' के अनुसार सुन्दर, सुमुख, स्वच्छ, सुलभ, श्रद्धावान, निश्चित आशयवाला, लोभरहित, स्थिर-शरीर, ऊहापोह-कुशल (प्रेक्षाकरी), जितेन्द्रिय, आस्तिक, गुरु, मन्त्र और देवता के प्रति दृढ़ भक्ति सम्पन्न शिष्य गुरु के लिये सुखप्रद होता है अन्यथा वह दुःखदायी होता है।

इतना ही नहीं, आचार्यों ने त्याज्य शिष्यों का भी लक्षण बतलाया है। रुद्रयामल के अनुसार कामुक, कुटिल, लोकनिन्दित, असत्यवादी, अविनीत, असमर्थ, प्रज्ञाहीन, शत्रुप्रिय, सदा पाप-क्रिया में रत, विद्याहीन, मूढ़, कलिकाल के दोषों से समन्वित, वैदिक क्रिया से रहित, आश्रय के आचार से शून्य, अशुद्ध अन्तःकरणवाला, श्रद्धाहीन, धैर्यरहित, क्रोधी, भ्रान्त, असच्चरित्र, गुणहीन, सदा पर-स्त्री के लिये आतुर, भक्तिहीन, अनेक प्रकार की निन्दाओं का पात्र शिष्य वर्जित माना गया है

इस प्रकार पुराणों और तन्त्र-ग्रन्थों में

गुरु-शिष्यों के विषय में विशद वर्णन मिलता है। गुरु की महिमा का वर्णन करते हुए मण्डमालातन्त्र में सम्पूर्ण विश्व को गुरुमय माना गया है-

गुरुरेकः शिवः साक्षाद् गुरुः सर्वार्थसाधकः।
गुरुरेव परं तत्वं सर्वं गुरुमयं जगत्।।

कौलावली-निर्णय में कहा गया है कि ब्रह्मा, पराशर, व्यास, विश्वामित्र आदि ने गुरुशुश्रूषा के कारण ही सिद्धि लाभ किया था। योगसूत्र में भी ईश्वर को गुरु रूप में वर्णित करते हुए कहा गया है कि अनवच्छिन्नकाल से ही वह सभी का गुरु है-**'स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्।'** इस प्रकार के महत्व के लिये 'गुरु' शब्द से उनका अभिधान किया गया है। अनेक उपनिषदों में शिष्यों की गाथाएँ उपलब्ध हैं, जिनके द्वारा यह सिद्ध है कि सद्गुरु के समीप आत्मनिवेदन या शरणागति के द्वारा आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि हो जाती है। जैसे-श्वेतकेतु, नचिकेता, मैत्रेयी आदि को सत्यनिष्ठ रूप में गुरु के समीप आकर उनके आज्ञानुसार सेवा में तत्पर होने से सभी कुछ प्राप्त हुए थे। पौराणिक एवं आधुनिक गाथाएँ भी इसका साक्ष्य वहन कर रही हैं, जैसे ध्रुव, प्रह्लाद आदि।

श्री गुरु के प्रति कर्तव्य

गुरु, कुलशास्त्र, पूज्यस्थान-इनके पूर्व में श्री शब्द का प्रयोग कर भक्तिपूर्वक उच्चारण करते हुए प्रणाम करें। अपना और गुरु के नाम का उच्चारण न करें। जप के अतिरिक्त विचार आदि के समय में गुरु का नाम उच्चारण न कर श्रीनाथ, स्वामी, देव आदि शब्दों से गुरु का उल्लेख करना शिष्य के लिये विहित है।

आगमानुसार आनन्दनाथ एवं अम्बा शब्द का अन्त में प्रयोग कर विचार और साधना के समय गुरु का स्मरण करना चाहिये। गुरु के सम्मुख मिथ्या भाषण करने पर गोवध एवं ब्रह्मवध का-सा पाप होता है। गुरु के साथ एक आसन पर शिष्य को नहीं बैठना चाहिये तथा गुरु के आगे-आगे नहीं चलना चाहिये। शक्ति, देवता और गुरु की छाया का लंघन नहीं करना चाहिये। गुरु के समीप रहने पर उनके आदेश के बिना, उनकी वन्दना के बिना निद्रा, ज्ञान का परिचय-प्रदान, भोजन, शयन कर करें। अपना प्रभुत्व और औद्धत्य न प्रकट करें तथा शास्त्र-व्याख्यान, दीक्षा आदि न दें। गुरु की आज्ञा के बिना उनकी वस्तु को नहीं लेना चाहिये। इष्टतम वस्तु गुरु को प्रदान करनी चाहिये। शिष्य के द्वारा किया गया पुष्प आदि स्वल्प वस्तु का दान भी शिष्य को अधिक महत्व का मानना चाहिये। गुरुवंश भी शिष्य कीपूजा के योग्य है। युवती गुरुपत्नी के पैर का स्पर्श हाथ से न करें। शिष्य गुरु की निन्दा न करे, उसे गुरु की निन्दा भी नहीं सुननी चाहिये। रुद्रयामल के अनुसार शिष्य जिस दिन से गुरु की निन्दा, पिशुनता आदि करता है, उसी दिन से देवी उसकी पूजा को स्वीकार नहीं करतीं।

गुरु के भेद

कुलार्णवतन्त्र के अनुसार गुरु के छः भेद बतलाये गये हैं-प्रेरक, सूचक, वाचक, दर्शक, शिक्षक और बोधक।

वस्तुतः अन्य तन्त्रों के अनुसार गुरु के दो ही भेद माने गये हैं- दीक्षा गुरु और शिक्षागुरु। साधना व्यापार में प्रथम दीक्षा गुरु तत्पश्चात् शिक्षा गुरु होते हैं। दीक्षागुरु और शिक्षा गुरु एक या भिन्न भी हो सकते हैं।

तन्त्र के अनुसार गुरु आचार्य एवं देशिक नाम से कहे जाते हैं। आचार्य शब्द प्राचीन है और देशिक शब्द सम्प्रदाय-क्रम में उपलब्ध होता है, किंतु उपनिषद् में शिक्षा गुरु ही व्यवहृत होता है।

तन्त्र के आचार्य के व्याख्या-प्रसंग में कहा गया है-'जो स्वयं आचरण के द्वारा शिष्य के आचार को प्रतिष्ठित करते हैं और शास्त्रार्थ का निर्णय कर सकते हैं, वे आचार्य कहे जाते हैं। आचार-परायण शिष्य को स्वयं शिक्षा देने वाला आचार्य कहा जाता है।

देशिक-रूपधारी देवता, शिष्य के प्रति अनुग्रह कारी तथा करुणामयी मूर्ति देशिक कहा जाता है। देवता, शिष्य और करुणा-इन तीन शब्दों के आदि अक्षर को लेकर देशिक शब्द बनता है।

देवतारूपधारित्वाच्छिष्यानुग्रहकारणात्।
करुणामयमूर्तित्वाद् देशिकः कथितः प्रिये।।

(कु० तं० १७)

महाभारत के अनुसार उपदेश कुशल को 'देशिक' कहा जाता है-

धर्माणां देशिकः साक्षात् स भविष्यति धर्मभाक्।

(महा० भा० १३/१४७/४२)

इस प्रकार तन्त्र के अनुसार संक्षेप में 'गुरु-शिष्य'-भाव का दिग्दर्शन कराया गया है।

※ ※ ※

विशेष सूचना

'सिद्धयोग' अपनी आयु के 33 वर्ष पूर्ण कर 34 वें वर्ष में प्रवेश पा रहा है। वार्षिक सदस्यता वाले पाठकों का शुल्क मार्च 2001 अंक के संप्रेषण के साथ ही समाप्त हो जायेगा। श्री रामनवमी पर आने वाले गुरु भाई-बहिन अपना शुल्क संवाई आश्रम पर आकर जमा करा देते हैं। किन्तु जो नहीं आ पा रहे हैं, उन्हें चाहिये कि वे मनीआर्डर द्वारा अपना वार्षिक शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। *सदस्यता शुल्क आचार्य दासलाल ब्रह्मचारी के नाम अथवा व्यवस्थापक 'सिद्धयोग' कार्यालय संवाई एत्मादपुर (आगरा) के पते पर ही भेजा जाना चाहिये।* केवल सिद्धगुफा, संवाई अथवा व्यवस्थापक सिद्धयोग संवाई के नाम भेजे जाने पर मनीआर्डर सिद्धयोग कार्यालय तक नहीं पहुँच पायेगा। मनीआर्डर या तो वापिस चला जायेगा या अनधिकृत व्यक्ति के पास पहुँच जायेगा। इस प्रकार से हमारे पास आपका शुल्क न पहुँचने की स्थिति में हम आपको पत्रिका भेजने में असमर्थ रहेंगे।

कागज और मुद्रण व्यय बढ़ जाने के कारण न चाहते हुए भी हमें पत्रिका शुल्क में वृद्धि करनी पड़ रही है। नवीन शुल्क का विवरण इस प्रकार है-वार्षिक शुल्क रु. 85/- द्विवार्षिक रु. 150/- तथा आजीवन रु. 800/-। वे सभी इच्छुक गुरु भाई-बहिन जो सिद्धयोग के लिए अपना शुल्क भेजना चाहते हैं, कृपया मार्च माह के अन्त तक उपरोक्त सही पते पर मनीआर्डर अवश्य भिजवाने की व्यवस्था करें।

—संपादक

प्रयागराज महाकुम्भ शिविर

राजेश कुमार श्रीवास्तव

प्रयागराज की पावन भूमि और गंगा-यमुना-सरस्वती के संगम स्थल पर नयी सहस्त्राब्दि के प्रथम महाकुम्भ का आयोजन स्वयं में एक महत्वपूर्ण घटना कही जायेगी। परम पूज्य गुरुदेव जी द्वारा कुंभ के अवसर पर मानव कल्याणार्थ शिविर लगाने की जो परम्परा शुरू की गई उसके अनुरूप इस वर्ष भी दिनांक ९ जनवरी २००१ से ८ फरवरी २००१ तक उनके नाम से योग शिविर का सफलता पूर्वक संचालन किया गया। हजारों गुरुभक्त भाई बहिनों ने इस मंगलकारी अवसर का लाभ उठाते हुए ध्यान-वन्दना, पूजा अर्चना, योग साधना और आचार्यों के प्रवचन आदि कार्यक्रमों में भाग लिया। सभी ने श्रद्धा भक्ति पूर्वक नित्यप्रति पुण्यतोया त्रिवेणी में स्नान-लाभ किया।

प्रातः साढ़े आठ बजे आनन्दकन्द श्री महाप्रभुजी व गुरुदेव जी का आरतीपूजन तत्पश्चात् श्रीमद्भगवद्गीता का पाठ श्रद्धालुओं को कराया जाता रहा। सुबह १० बजे से सायंकाल ५ बजे तक सभी साधकजनों ने शान्तिपूर्वक बैठकर अपने-अपने गुरुमंत्रों का जाप करते हुए श्री भागवत् कथा के माध्यम से जगद्गुरु योगेश्वर श्री कृष्णचन्द्रजी की पावन लीलाओं का श्रवण कर दुर्लभ पुण्य कमाया। श्री प्रभुजी की महान कृपा से समूचे शिविरकाल में दो बार श्री भागवत् कथा को सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। कथा व्यास-पीठ पर ग्वालियर से पधारे आदरणीय धर्मेन्द्रजी तथा आ० संतोष कुमार शर्मा (उरई वाले) आसीन रहे।

सायंकालीन सत्संग में लगभग एक घण्टे तक भजन कीर्तन के पश्चात् लगभग इतने ही समय तक योग के गूढ़ सिद्धान्तों पर प्रवचन आयोजित किया जाता रहा। व्याख्याकार का दायित्व रहा लखनऊ के ब्रह्मचारी श्री ओमप्रकाश पालीवाल जी एवं श्री सिद्धगुफा संवाई के आचार्य श्री दासलालजी शर्मा पर। दोनों ही वक्ताओं ने योग के गम्भीर विषयों तथा गूढ़ रहस्यों को सरल भाषा में स्पष्ट कर साधकों की जिज्ञासाएँ शान्त की।

शिविर में दूर-दूर से आये हजारों गुरु भाई-बहिन सम्मिलित हुए। ब्रह्मचारी गणों में सर्वश्री आचार्य पूरन चन्द जी व केशवदेवजी (योग साधन आश्रम ऋषिकेश), ओमप्रकाश पालीवाल जी (लखनऊ) आचार्य दासलालजी (श्रीसिद्धगुफा, संवाई), वेदरामजी (दिल्ली), सतीशजी (बुलन्दशहर) शुक्लाजी (चित्रकूट), राममनोहर जी तिवारी (गंगापुर सिटी) लज्जाराम जी वाजपेई, देवेन्द्रजी, फक्कड़ जी, दूधनाथ जी, केशवदेवजी उपाध्याय आदि ने शिविर में शामिल होकर अपने प्रवचन, भजन सत्संग व अन्यान्य सेवाओं द्वारा सभी आगन्तुक गुरुभाई बहिनों को लाभान्वित किया।

शिविर का आयोजन इलाहाबाद के गुरु भक्तगणों के तत्वावधान में गठित समिति द्वारा किया गया। परमगुरु भक्त श्री मालवीय परिवार का सहयोग व परामर्श पाकर समिति के समस्त सदस्यों ने पूरे मनोयोग से आगन्तुक व्यक्तियों की सेवार्थ शिविर की व्यवस्थाओं में अत्यन्त प्रशंसनीय सेवाएँ देकर महान पुण्य अर्जित किया। समिति का पूर्ण सहयोग ऋषिकेश से पधारे आचार्य पूर्णचन्द्रजी शर्मा के द्वारा प्राप्त होता रहा, जिसके फलस्वरूप शिविर सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ।

जीवन तत्व साधन

(स्वास्थ्य-चर्चा)

(पिछले अंक से आगे)

(१) प्राणमय कोष-

इसमें सब प्राण अपनी शक्ति से अपना-अपना कार्य करते है। शरीर के अन्दर पाँच स्थानों में इनका व्यापार होता है। अतएव पृथक-पृथक कार्य करने के कारण इनके पृथक-पृथक नाम निम्नलिखित हैं-

(i) **प्राण** का कार्य श्वास-प्रश्वास के लिए मुख, नाक, कान, नेत्र तथा फेफड़ों में हुआ करता है।

(ii) **अपान** का कार्य मल, मूत्र व गर्भ निकालने के लिए लिंगेन्द्रिय व गुदा में हुआ करता है।

(iii) **समान** का कार्य समस्त शरीर में भोजन पहुँचाने के लिए उदर में हुआ करता है।

(iv) **व्यान** का कार्य रक्त संचालन के लिए समस्त नाड़ियों में हुआ करता है। हृदय से १०१ नाड़ियाँ निकलती है। फिर आगे उनमें से एक-एक से सौ-सौ शाखायें निकलती है, फिर उनमें से एक-एक से ७२-७२ शाखायें निकलती है, फिर उनमें से एक-एक से हजार-हजार शाखायें निकलती है। इस तरह से कुल ७२,७२,००,००० शाखाओं में व्यान वायु भ्रमण किया करती है।

(v) **उदान** का कार्य शरीर के समस्त कर्मों के प्रभाव को संचित करने के लिए सुषुम्ना नाड़ी में हुआ करता है। उदान वायु मृत्यु के समय सूक्ष्म शरीर को लेकर उड़ जाता है। जिस समय जीव सूक्ष्म शरीर के साथ निकलता है उस समय शरीर के मुख, नाक, कान आदि छिद्रों से निकलता है परन्तु कर्मों का क्षय होने पर जब अकेला निकलता है तो सिर को फोड़कर विद्रुत् द्वार से निकलता है। जीवन इसी विद्रुत् द्वार से शरीर में प्रवेश करता है और तभी कपाल का भाग पोला होता है और डब-डब किया करता है।

इन पाँच प्राणों के अतिरिक्त पाँच प्राण और भी होते हैं-

नाग-कूर्म-कृकर, देवदत्त, धनञ्जय।

नाग वायु छीकना आदि, **कूर्म** वायु संकोचनीय, **कृकर** वायु क्षुधा तृष्णादि, **देवदत्त** वायु निद्रा-तंद्रा और **धनञ्जय** यथार्थ रूप से कार्य करते रहें तो शरीर निरोग व स्वस्थ बना रहता है। जीवन तत्व साधन की क्रियायें सभी प्राणों में नव-चेतना का प्रवाह पैदा करती है।

(२) मनोमय कोष-

इस कोष के अन्दर मन, बुद्धि, चित्त व अहंकार है। योग में चित्त का विशेष स्थान है। चित्त जाग्रत अवस्था में माध्यम होकर स्थूल जगत का सम्बन्ध रखकर आत्मा को समाचार दिया करता है। चित्त की पाँच वृत्तियाँ होती हैं, ये कभी बहिर्मुखी होती है, कभी अन्तर्मुखी। ये पाँच वृत्तियाँ निम्नलिखित है-

प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा, स्मृति।

(i) प्रमाण वृत्ति तीन प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष-अनुमान व आगम जो इन्द्रियों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त होता है वह प्रत्यक्ष प्रमाण है। प्राचीन सत्पुरुषों का जो अनुभव शब्दों में संग्रहीत है उसे आगम प्रमाण कहते है।

(ii) उल्टा ज्ञान होना विपर्यय है। यथार्थ स्वरूप से भिन्न कुछ का कुछ समझना विपर्यय है। जैसे रस्सी को सांप समझना।

(iii) कल्पना मात्र को विकल्प कहते है। वस्तुत से शून्य शब्द ज्ञान पर कल्पना करना विकल्प है। जैसे गूलर के फूल की सम्भावना करना शेखचिल्ली की तरह हवाई किले बनाना।

(iv) निद्रा वृत्ति वही है जिसका अनुभव सबको है। निद्रा के समय ज्ञान का अभाव हो जाता है।

(v) पाँचवी वृत्ति स्मृति है। अनुभव किये हुए विषय का स्मरण करना स्मृति है।

यह सब वृत्तियाँ दो प्रकार की होती है- क्लेशकारक और क्लेशनिवारक। जैसे अच्छे सद्गुरु के शब्दों पर विश्वास करने से लाभ होता है और ढोंगी के शब्दों पर करने से हानि। योगनिद्रा से आराम व साधारण निद्रा से सुस्ती। अच्छे-अच्छे उपदेशों को स्मरण करने से मनुष्य का अभ्युदय होता है परन्तु दूसरे के दोषों का चिन्तन करने से मनुष्य का पतन होता है।

(३) विज्ञानमय कोष-

इस कोष के अन्दर वे ज्ञान तन्तु समूह आते है जिनको चक्र अथवा (Plexus) कहते है। यद्यपि ये स्थूल शरीर के ही अंग है, परन्तु आधुनिक विज्ञान को इसका विशेष ज्ञान नहीं है और केवल योग बल ही से इसका हाल जाना जा सकता है। अतः हम इसका वर्णन सूक्ष्म शरीर ही में करेंगे।

मनुष्य शरीर में रहने वाले ज्ञान-तन्तुओं का समूह दो विभागों में विभाजित किया गया है। प्रथम मस्तिष्क और रीढ़ की हड्डी के पोलान में रहने वाला ज्ञान-तन्तुओं का समूह और दूसरा छाती उदर और पेट के पोलान में रहने वाला ज्ञान तन्तुओं का समूह। प्रथम को **मस्तिष्क व सुषुम्ना मण्डल** और दूसरे को **सहानुभूतिक मण्डल** कहते है। पहला भाग मस्तिष्क से लेकर रीढ़ की हड्डी और उसकी शाखाओं में सीमित है। समस्त इन्द्रिय व्यापार इस विभाग के द्वारा होता है। दूसरा भाग छाती, पेट, पेट के नीचे के भागों तक है और शरीर का अन्तर्व्यापार इसका काम है।

मनुष्य का मस्तिष्क भी तीन भागों में विभाजित किया गया है-

(१) मुख्य मस्तिष्क (Cerebrum) जो खोपड़ी के ऊपर वाले अगले मध्य और पिछले भागों में रहता है। यह स्थान बुद्धि का गोलक है।

(२) गौण मस्तिष्क (Cerebellum) जो सिर के नीचे वाले भाग में रहता है।
यह ऐच्छिक माँसपेशियों में गति का संचार करता है। यह चित्त का गोलक है।

(३) अधः स्थित मस्तिष्क (Medulla oblongata) यह मेरुदण्ड का ऊपरी भाग है। इससे और प्रधान मस्तिष्क से असंख्य ज्ञान तन्तु खोपड़ी के विविध भागों में फैल रहे हैं।

पीठ के बीचों-बीच रीढ़ की हड्डियाँ लम्बी जुड़ी हुई चली गई है। इसके बीच में जो पोला भाग है उसमें गुद्दी (Marrow) रहती है। इसमें ज्ञान-तन्तुओं का एक बड़ा भारी समूह रहता है। शरीर के समस्त अवयवों से सम्बन्ध रखने वाले असंख्य ज्ञान-तन्तु इससे निकल कर शरीर में फैले हुए हैं। मेरुदण्ड एक तरह से टेलीफोन का मुख्य तार है और तन्तु जाल उससे सम्बन्धित तार है।

दूसरा भाग सहानुभूतिक मण्डल है। इसमें नाड़ी गुच्छक (Ganglia) की दो श्रृंखलायें मेरुदण्ड के दाहिने व बायें दोनों ओर हैं। पृष्ठ रज्जू के बीच में जाने वाली जो पोली सी नली है उसे **सुषुम्ना** कहते हैं। इनके अतिरिक्त सिर, गर्दन, छाती और पेट में भी स्वतन्त्रतापूर्वक रहने वाली ज्ञान-तन्तुओं की ग्रन्थियाँ हैं। इन ग्रन्थियों में से असंख्य सूक्ष्म रेशे निकलकर शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों में पहुँचे हैं। कई स्थानों पर ये तन्तु एकत्रित होकर मिल गये हैं। इन्हीं को **चक्र** कहते हैं। मुख्य सात चक्र हैं-

मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्ध, आज्ञा और सहस्रार।

ये चक्र पाँचों तत्वों, पाँचों तन्मात्राओं, पाँचों ज्ञानेन्द्रियों, पाँचों कर्मेन्द्रियों, पाँचों अन्तःकरण, समस्त वर्णों स्वरों तथा सातों लोकों के मण्डल है और नाना प्रकार के प्रकाश तथा विद्युत से युक्त है। साधारण अवस्था में ये चक्र बिना खिले कमल के सदृश अधोमुख हुए अविकसित रहते हैं। यौगिक क्रियाओं से उत्तेजना पाकर जब ये ऊर्ध्वमुख होकर विकसित होते हैं तब उनकी अलौकिक शक्तियों का विकास होता है। चक्रों का विशेष विवरण नीचे दिया जा रहा है-

(१) मूलाधार चक्र (Pelvic plexus)

१. चक्रस्थान-गुदामूल से दो अंगुल ऊपर
२. आकृति-रक्त रंग के प्रकाश से उज्वलित चार पंखुडी वाले कमल के समान।
३. दलों के अक्षर चारों दलों पर वं, शं, षं, और सं।
४. तत्व स्थान-चौकोण सुवर्ण रंग वाले पृथ्वी तत्व का मुख्य स्थान है।
५. तत्व बीज-लं है ?
६. तत्व बीज की गति-ऐरावत हाथी के समान सामने की ओर जाते है।
७. गुण-गन्ध गुण है।
८. वायु स्थान-नीचे की ओर चलने वाले अपान वायु का स्थान है।
९. ज्ञानेन्द्रिय-गन्ध तन्मात्रा से उत्पन्न होने वाली सूँघने की शक्ति नासिका का स्थान है।
१०. कर्मेन्द्रिय पृथ्वी तत्व से उत्पन्न होने वाली मलत्याग शक्ति गुदा का स्थान है।
११. लोक-भू लोक है।
१२. तत्व बीज का वाहन-ऐरावत हस्ती जिसके ऊपर इन्द्र विराज मान है।
१३. अधिपति देवता-चतुर्भुज ब्रह्म अपनी शक्ति डाकिनी के साथ।
१४. यन्त्र-चतुष्कोण-सुवर्ण रंग।
१५. चक्र पर ध्यान का फल-आरोग्यता, आनन्द चित्त, वाक्य, काव्य प्रबन्ध दक्षता।

※ ※ ※

परमपद का अधिकारी कौन ?

(कठोपनिषद से)

अणोरणीयान् महतो महीयानात्मास्य जन्तोर्निहितो गुहायाम्।
तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुप्रसादान्महिमानमात्मनः।।

(१/२/२०)

इस जीव के हृदय रूप गुफा में रहने वाला आत्म-परमात्मा सूक्ष्म से भी सूक्ष्म और महान से महान है, परमात्मा की उस महिमा को कामनारहित, वीतशोक विरला पुरुष सर्वाधार परब्रह्म परमेश्वर की कृपा से ही देख पाता है।

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्।।

(१/२/२४)

सूक्ष्म बुद्धि के द्वारा भी इस परमात्मा को न तो वह मनुष्य प्राप्त कर सकता है, जो बुरे आचरणों से निवृत्त नहीं हुआ है, न वह प्राप्त कर सकता है, जो अशान्त है; न वह ही, जिसके मन-इन्द्रियाँ संयमित नहीं है और न वही जिसका मन चंचल है।

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्क सदाशुचि।
न स तत्पदमाप्नोति संसार चाधिगच्छति।।

(१/३/७)

जो सदा विवेकहीन बुद्धिवाला, असंयतचित्त और अपवित्र जीवन रहता है, वह उस परमपद को नहीं पा सकता; वरं वह तो बार-बार जन्म-मृत्यु रूप संसार-चक्र में ही भटकता रहता है।

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते।।

परन्तु जो सदा विवेकशील बुद्धि से सम्पन्न, संयतचित्त और पवित्र जीवन होता है, वह उस परमपद को प्राप्त हो जाता है। जहाँ से लौटकर फिर संसार में जन्म नहीं लेता।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक
श्री सिद्धगुफा योग-प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

श्री ....

न विना ज्ञानविज्ञाने मोक्षस्याधिगमो भवेत्। न विना गुरुसम्बन्धं ज्ञानस्याधिगमः स्मृतः।।
गुरुः प्लावयिता तस्य ज्ञानं प्लव इहोच्यते। विज्ञाय कृतकृत्यस्तु तीर्णस्तदुभयं त्यजेत्।।

(महाभारत शान्तिपर्व ३२६/२२-२३)

जैसे ज्ञान-विज्ञान के बिना मोक्ष नहीं हो सकता, उसी प्रकार सद्गुरु से सम्बन्ध हुए बिना ज्ञान की प्राप्ति नहीं हो सकती। गुरु इस संसार सागर से पार उतारने वाले हैं और उनका दिया हुआ ज्ञान नौका के समान बताया गया है। मनुष्य उस ज्ञान को पाकर भवसागर से पार और कृतकृत्य हो जाता है, फिर उसे नौका और नाविक दोनों की ही अपेक्षा नहीं रहती।

प्रकाशक एवं मुद्रक- विनय गजानन्द शर्मा द्वारा कर्मयोग प्रिंटि... राष्ट्रीय ब्लाक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, जौहरी बाजार, आगरा से मुद्रित एवं श्री योग... (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। फोन : 732326